'घुसपैठिये' में अभिव्यक्त दलित समाज का आलोचनात्मक अध्ययन

('GHUSPAITHIYE' MEIN ABHIVYAKTA DALIT SAMAJ KA AALOCHANATMAK ADHYAYAN)

(एम.फिल. उपाधि हेतु लघु शोध–प्रबंध)

2009

शोधार्थी

ब्रह्मा नन्द

शोध–निर्देशक

डॉ. गोबिन्द प्रसाद

सह–शोध निर्देशक

डॉ. राम चन्द्र

भारतीय भाषा केन्द्र

भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान

जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय

नई दिल्ली 110067

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY
School of Language, Literature, & Culture Studies
NEW DELHI-110067, INDIA

Dated: 08/07 2009

DECLARATION

I declare that the work done in this dissertation/thesis entitle "GHUSPAITHIYE' MEIN ABHIVYAKTA DALIT SAMAJ KA AALOCHANATMAK ADHYAYAN" (A CRITICAL STUDY OF DALIT COMMUNITY EXPRESSED IN 'GHUSPAITHIYE') by me is an original work and has not been previously submitted for any other degree in this or any other university/institution.

BRAHMA NAND
(Research Scholar)

DR.GOBIND PRASAD
(Supervisor)
CIL/SLL&CS/JNU

08.07.09
DR.RAM CHANDRA
(Joint Supervisor)
CIL/SLL&CS/JNU

PROF. CHAMAN LAL
(Chairperson)
CIL/SLL&CS/JNU

GRAM : JAYENU, TEL. : (91-011) 6107676, 6167557 Extn. : 2217, Fax : (91-011) 6165886, 6198234

समर्पित

बाबा साहब भीमराव अम्बेडकर.....

अपनी बात

'अपनी बात' कहना किसी भी व्यक्ति के लिए जोखिम भरा कार्य है। सारे झगड़े अपनी बात से ही शुरू होते हैं। अपनी बात कहने के अंदर अधिकार का भाव रहता है जो एक प्रकार से असहमति का भी सूचक है, यही असहमति वाद–विवाद और संवाद को जन्म देती है। दलित साहित्य पर शोध कार्य करते हुए एक शोधार्थी के रूप में अपनी बात की शुरूआत करते हुए मेरे लिए असमंजस की स्थिति उत्पन्न हो गई है। समझ में नहीं आ रहा कि बात की शुरूआत कहां से करूं ? असंतोष और प्रश्न–व्याकुलता दिमाग के हर चौराहे पर मुहं बाये खड़ी है। मानव बौद्धिकता के प्रतीक इतिहास, दर्शन, संस्कृति एवं विचारधाराएं सभी न्यायालय के कठघरे में खड़ी हुई–सी जान पड़ती हैं। दलित साहित्य का शोधार्थी होने के रूप में अपनी बात की शुरूआत मैं उन दो प्रमुख पुस्तकों से करना चाहूंगा जिनको पढ़ते हुए एक ओर जहां बौद्धिक संतोष मिला वहीं दूसरी ओर असंतोष एवं विस्मय का भाव भी चेहरे पर कई दिनों तक बना रहा था। प्रथम पुस्तक है 'भारतीय चिन्तन की परम्परा' जिसके लेखक हैं के. दामोदरन और द्वितीय पुस्तक के रचनाकार प्रसिद्ध मार्क्सवादी लेखक, विचारक ई. एम. एस. नंबूदिरिपाद हैं। आपकी पुस्तक का नाम है 'भारत का स्वाधीनता संग्राम'। चूंकि दोनों विचारक मार्क्सवादी हैं इसलिए यह संभावना व्यक्त की जा सकती है कि इनकी दृष्टि दक्षिण पंथी सवर्ण विचारकों से नितांत भिन्न होगी। दामोदरन प्राचीन भारतीय चिन्तन लोकायत दर्शन से लेकर प्रमुख आधुनिक विचारक तिलक, गांधी, नेहरू आदि सभी की चिन्तन परम्परा पर प्रकाश डालते हैं, लेकिन बाबा साहब भीमराव अम्बेडकर के चिन्तन पर मौन धारण कर लेते हैं। बाबा साहेब का चिन्तन मनुवादी व्यवस्था के विरूद्ध एक ऐसा समाज निर्मित करता है जो समानता एवं बंधुत्व जैसे उदात्त भावों पर आधारित है। जहां दलित सम्मान पूर्वक अपना जीवन यापन कर सकें, इतना ही नहीं उन्होंने मनुस्मृति से लेकर उन तमाम धार्मिक ग्रंथों का विरोध किया जो किसी न किसी रूप में असमानता का पोषण कर रहे थे। सर्वप्रथम बाबा साहेब की लेखनी ही शूद्र वर्ग की उत्पत्ति पर प्रकाश डालती

है और तर्क पूर्ण ढंग से भारत के इतिहास की व्याख्या करती है। नंबूदिरिपाद ने भी अपने ग्रंथ में ज्योतिबा फुले, सवित्रीबाई फुले के सामाजिक कार्यों तथा बाबा साहेब के संघर्षों की एक सिरे से उपेक्षा करके भारत के स्वाधीनता संग्राम का इतिहास लिखा है। यहां तक की 'पूना पैक्ट' जिसका प्रभाव आज भी भारतीय समाज और राजनीति पर काफी गहरा है, को सफलता पूर्वक ब्लैक आउट कर दिया है। कहने का तात्पर्य यह है कि इन विचारकों की दृष्टि में दलित चिन्तक, उनकी चिन्तन परम्परा एवं उनके आंदोलन भारत के इतिहास से बाहर की वस्तु हैं। इन मार्क्सवादी विचारकों का रवैया भी सवर्ण विचारकों की तरह ही रहा है। उन्होंने भी गांधी और नेहरू की प्रशंसा में कसीदे पढ़े हैं। यह तो मात्र एक उदाहरण है। साहित्य, धर्म, संस्कृति प्रत्येक क्षेत्र में यह असमानता व्याप्त है। दलित चिंतन इस असमानता का विरोध करता है। परन्तु उनका यह विरोध तथाकथित सवर्ण समाज के वर्चस्व, शोषण एवं दमन की प्रवृतियों का है। ऐसा नहीं है कि गैर दलित या तथाकथित सवर्ण समाज के भीतर से असमानता आधारित व्यवस्था के खिलाफ आवाज न उठाई गई हो। गैर दलित समाज के कुछ विचारक भी समय–समय पर भारतीय समाज में व्याप्त शोषण की प्रवृति के खिलाफ आवाज उठाते रहे हैं उदाहरण स्वरूप राहुल सांकृत्यायन, अश्वघोष जैसे गैर दलित (सवर्ण/ब्राह्मण) विद्वानों का नाम लिया जा सकता है। इन ख्यातिलब्ध चिंतकों ने हिन्दू धर्म की जड़ता पर अनेक बार प्रहार भी किया है।

प्रस्तुत **लघु–शोध प्रबंध** में मेरे द्वारा सवर्ण शब्द का इस्तेमाल वर्चस्वशाली समाज के द्वारा असमानता और भेदभाव पूर्ण व्यवहार करने वाले जुर्म की मानसिकता का द्योतक है। इसलिए शोधार्थी का उद्देश्य वर्ण व्यवस्था के आधार पर विकसित जाति व्यवस्था और किसी भी तरह के वर्चस्व को चुनौती देने वाले या खात्मा करने वाली विचारधारा आधारित रचनाओं के केन्द्र में रखकर ब्राह्मणवादी मानसिकता के विकल्प के रूप में सवर्ण शब्द का चुनाव किया गया है चूंकि कहानी संकलन में पात्र की पहचान दलित और सवर्ण के रूप में ही उभरती या चिह्नित की गई है इसलिए सवर्ण शब्द का प्रयोग प्रासंगिक है, कहने का अभिप्राय यह है कि सवर्ण शब्द का संबंध किसी जाति

विशेष मात्र से नहीं है, बल्कि एक खास तरह की मानसिकता से है। भारत में दो परस्पर विरोधी दर्शन प्राचीन काल से ही विद्यमान हैं जिन्हें आध्यात्मिक दर्शन और भौतिक दर्शन के नाम से जाना जाता है। दर्शन में तर्कपूर्ण तथ्यों का स्वागत किया जाता है, लेकिन जिस कदर **भारतीय चिन्तन परम्परा** में भौतिकवादी दर्शन की आलोचना की गई है। उसमें वामाचार, व्यभिचार आदि की प्रधानता कह कर, उसे बदनाम किया गया है, उसने मर्यादा की सभी सीमाओं को तोड़ दिया है। इसका प्रभाव परवर्ती काल के तमाम संत एवं कवियों पर भी पड़ा है। वे साहित्य, दर्शन और इतिहास में उपेक्षा के पात्र बन गए। कबीर, रैदास, दादू, इसके ज्वलंत उदाहरण हैं। ऐसी स्थिति में भारतीय समाज का निम्न वर्ग कहे जाने वाले दलित समाज की दुर्दशा की तो मात्र कल्पना ही की जा सकती है। यह लघु शोध–प्रबंध ओमप्रकाश वाल्मीकि का कहानी संग्रह 'घुसपैठिये' के माध्यम से इतिहास में दबे इन्हीं उपेक्षित, पीड़ित, दलितों के समाज, परिवार, संस्कृति, एवं दर्शन आदि पर दृष्टि डालने का छोटा–सा प्रयास है। एक शोधार्थी के रूप में मैं अत्यन्त भाग्यशाली रहा हूं क्योंकि मेरे दो गुरूजनों प्रो. गोबिन्द जी एवं प्रो. राम चन्द्र जी का आशीर्वाद सदैव मेरे साथ रहा है। जिनके मार्ग दर्शन के बिना यह कार्य निश्चय ही अधूरा रह जाता।

विद्यार्थी जीवन में मित्रों का सर्वाधिक महत्व होता है, यही मित्र आगे चलकर जीवन के सुख–दुख में सहभागी भी होते हैं। यद्यपि आज के स्वार्थमय संसार में ये बातें दकियानूसी लग सकती हैं, लेकिन मित्रता का भाव आज भी इस संसार में कहीं न कहीं जीवित है। मैं इस मामले में थोड़ा भाग्यशाली रहा हूं। सभी का नाम लेना तो मेरे लिए संभव नहीं है लेकिन फिर भी मन नहीं मानता है। भाई प्रवीण ने दलित विमर्श से संबंधित अनेक महत्वपूर्ण पुस्तकें उपलब्ध करवाकर मेरे कठिन कार्य को सरल बना दिया। साथ ही इस शोध–प्रबंध को सम्पन्न करने में पूनम, प्रदीप, हेमन्त, दीपक मित्रों का भावनात्मक सहयोग रहा है। मैं इन सभी का विशेष आभारी हूं।

शोधार्थी

ब्रह्मा नंद

'घुसपैठिये' में अभिव्यक्त दलित समाज का आलोचनात्मक अध्ययन

अनुक्रम

अपनी बात

पहला अध्याय 5—19

कहानी और दलित कहानी

दूसरा अध्याय 20—45

दलित कथा एवं ओमप्रकाश वाल्मीकि की कथादृष्टि

तीसरा अध्याय 46—79

'घुसपैठिये' में अभिव्यक्त दलित समाज

चौथा अध्याय 80—94

'घुसपैठिये' की भाषा एवं शिल्प

उपसंहार 95—99

सहायक—ग्रंथ 100—103

अध्याय एक

कहानी और दलित कहानी

'आधुनिक काल' भारतीय समाज में गतिशीलता उत्पन्न करने का एक निश्चित प्रस्थान बिन्दु है। यह गतिशीलता मध्यकालीन भारत की मूल चारित्रिक विशेषता के प्रत्येक पहलू में परिवर्तन की आकांक्षा से युक्त है। पश्चिमी ज्ञानोदय ने भारतीय परिदृश्य को बदलने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। मध्यकाल से आधुनिक काल में प्रवेश एक बौद्धिक प्रक्रिया के तहत होता है। जब मानव–ज्ञान की विभिन्न विधाएं धार्मिक आवरण को त्याग कर भौतिक एवं लौकिक रूप धारण करती हैं तभी से मानव समाज को आधुनिक कहना अधिक उपयुक्त जान पड़ता है। पश्चिमी देशों में भी ज्ञान, मानव–व्यवहार, सामाजिक आदि प्रत्येक क्षेत्र में धर्म का अत्याधिक दखल था। धर्म के चश्में से देखने वाली इस प्रवृति को बदलना सहज कार्य नहीं था, परन्तु भौगोलिक खोजों एवं तर्कपूर्ण वैज्ञानिक दावों की स्थापना ने इस परिदृश्य को बदलने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। भारतीय समाज का प्राचीन स्वरूप भी बहुत कुछ इसी प्रकार का था जिसका व्यापक असर मध्यकालीन भारत में भी रहा था। राज्य, शिक्षा, अर्थव्यवस्था आदि सभी का संचालन धर्म की धुरी से ही होता था। इस स्थिति में भला साहित्य धर्म से कैसे पृथक हो सकता था यही कारण है कि भारतवर्ष में रामायण एवं महाभारत जैसे ग्रंथ एक ओर जहां इतिहास, समाजशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, आदि नीतियों के निर्धारक तत्व थे वहीं दूसरी ओर यह अक्षुण्ण रूप से धार्मिक ग्रंथ भी थे। मध्यकालीन भारत में भी स्थिति जस की तस ही रहती है। रामचरितमानस एवं सूरसागर जैसे ग्रंथ तथाकथित भारतीय आदर्श समाज की स्थापना को समर्पित हैं। धर्म और साहित्य का यह रिश्ता आधुनिक काल में खंडित हो जाता है, परन्तु पूर्ण रूप से नहीं, धार्मिक कथाओं के आधार पर साहित्य की रचना आधुनिक काल में भी होती रही है। साकेत, राम की शक्ति पूजा जैसी रचनाएं इसी का द्योतक है, लेकिन जब मार्क्सवाद और अम्बेडकरवाद से प्रेरित होकर साहित्य रचा जाने लगा तभी से इस परिदृश्य में व्यापक

बदलाव के संकेत मिलने लगते हैं, जिसके परिणामस्वरूप परम्परागत साहित्य की उक्त धारणा टूटती है और साहित्य अपनी अलग राह बनाता है।

हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल रीतिकाल के बाद आरंभ होता है यद्यपि रीतिकाल की व्याख्या आज भी हिन्दी आलोचकों के सामने एक चुनौती ही है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के प्रहारों से घायल रीतिकालीन साहित्य आज तक दुरूस्त नहीं हो सका है खैर, यह बहस का विषय है। आधुनिक काल में रचित साहित्य पर दलित दृष्टि से विचार करना एवं हिन्दी कहानी का संक्षिप्त विकास दिखाना इस अध्याय का अहम हिस्सा है। यद्यपि आधुनिककालीन हिन्दी साहित्य ने परवर्ती काव्य विषय एवं भाषा का अतिक्रमण कर हिन्दी साहित्य को नई दिशा दी है। इस कालखण्ड में अनेक नई साहित्य विधाओं–कहानी, नाटक, निबंध आदि का जन्म हुआ। कहानी, नाटक, निबंध, जैसी साहित्यिक विधाएं विचारों के सम्प्रेषण का सशक्त माध्यम बनीं। कथा कहने की परम्परा प्रत्येक देश के साहित्य में अक्षुण्ण रूप से विद्यमान है। इस विधा के उद्‌भव के लिए सनातनी एवं रूढ़ि ग्रस्त आलोचक ऋग्वेद से लेकर पुराणों तक की यात्रा करते हैं और फिर पौराणिक पात्रों के संवाद में कहानी के तत्वों के अंश को खोज निकालते हैं, लेकिन उसमें कहानी का कोई गंभीर तत्व नहीं मिलता है। आधुनिक हिन्दी कहानी का जन्म भारतीय समाज में आधुनिक चेतना के साथ ही हुआ है।

कहने का अभिप्राय यह है कि कथा–कहना मानव जाति का एक सहज गुण है जो धर्म, जाति एवं सांस्कृतिक विशेषताओं से नितान्त निरपेक्ष होता है, परन्तु सुसभ्य एवं सुसंस्कृत कहलाने वाले वर्गों की कथा कहने की शैली तथा निम्न वर्ग के लोगों में कथा कहने की शैली में अन्तर अवश्य ही होता है। आदिवासी, दलित समाज के लोग अपने जीवन–यापन के लिए अनेक जगहों की यात्रा करते हैं। इन यात्राओं के परिणामस्वरूप निर्मित स्मृतियां कहानी की आधारभूमि तैयार करती है। इस रीति से रचित कहानी अभिजात्य वर्ग के साहित्य से नितांत पृथक होती है। अभिजात्य वर्ग के लिए कहानी मनोरंजन का सस्ता साधन मात्र हो सकता है, लेकिन दलित वर्ग के लिए कहानियां एवं सम्पूर्ण दलित साहित्य उनके जीवन संघर्ष, आत्मसम्मान, समानता और अधिकार का द्योतक ही नहीं बल्कि पर्याय भी है। कथा कहने के इन दोनों ही रूपों का

प्रभाव हिन्दी कहानी के उद्‌भव एवं विकास पर चरितार्थ किया जा सकता है। प्रारंभिक हिन्दी कहानी का स्वरूप मनोरंजनात्मक था वह खाली समय में टाइम पास करने का एक साधन मात्र थी। गुलाब राय हिन्दी कहानी के आरंभिक रूप पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं "नये प्रकार की कहानी का जन्म वर्तमान युग की आवश्यकताओं में हुआ है। मासिक पत्रिकाएं दैनिक जैसे क्षणजीवी और पुस्तकों जैसे अपेक्षा कृत स्थायी साहित्य के बीच की वस्तु होती है। ये मास–प्रतिमास नई सामग्री उपस्थित कर पाठकों के मनोरंजन तथा ज्ञान वृद्धि का साधन बनती है और गृह कक्ष में, रेल के सफ़र में, कभी–कभी स्कूल कॉलेजों के खाली घण्टों में अथवा अध्यापक की आंख बचाकर भरे घण्टों में भी कम–से कम पीछे की बेचों पर भी मन बहलाव करने वाले वार्तालाप कुशल मित्र का काम देती है।"[1] निःसंदेह इंशा अल्ला खां कृत 'रानी केतकी की कहानी', मुंशी नवल किशोर द्वारा सम्पादित 'मनोहर कहानी'(1880), और चण्डी प्रसाद सिंह कृत 'हास्य रतन' (1886), आदि कहानी संग्रह मनोरंजन प्रधान, स्वप्न कथाओं के रूप में पाठक के सम्मुख आते हैं। इस काल खण्ड (भारतेन्दु) की कहानियों के माध्यम से नीतिप्रद शिक्षा, पाप–पुण्य, पुनःजन्म आदि की व्याख्या की जाती थी।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में 'सरस्वती' (1900), पत्रिका का आरंभ होना एक महत्वपूर्ण घटना थी विशेषकर कहानी के क्षेत्र में। अनेक मौलिक कहानीकारों को जन्म देने का श्रेय 'सरस्वती' पत्रिका को ही प्राप्त है। प्रेमचंद की आरंभिक कुछ कहानियां इसी पत्रिका में प्रकाशित हुई थीं, परन्तु चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ने 'उसने कहा था' लिखकर कहानी विधा में यथार्थ तत्व का समावेश कर दिया। फ्लैश बैक के माध्यम से यथार्थवादी कहानी कहने की कला और युद्ध–क्षेत्र का वर्णन हिन्दी कहानी के लिए एक नयी वस्तु थी। आगे चलकर हिन्दी साहित्य का छायावादी युग आरंभ हो जाता है। प्रेमचंद और जयशंकर प्रसाद इस युग के मूर्धन्य कहानीकार हैं। इन दोनों कहानीकारों ने कहानी कला को दो भिन्न–भिन्न क्षेत्रों में विकसित किया। प्रेमचंद की कहानियों में तो कहानी–कला अपने उच्चतम सोपान तक पंहुच जाती है। प्रेमचंद के माध्यम से ही दलित समाज हिन्दी साहित्य में दस्तक देता है।

हिन्दी कहानी के विकास की दृष्ट से छायावादी काल का विशेष महत्व है। आलोच्य काल खण्ड में हिंदी कहानी को समृद्ध करने वाले कथाकारों में प्रेमचंद, जैनेन्द्र, विश्वम्भरनाथ शर्मा, और जयशंकर प्रसाद आदि का प्रमुख स्थान है, परन्तु व्यवहारिक रूप से पूरे काल खण्ड में एकछत्र साम्राज्य प्रेमचंद का ही रहा था। प्रेमचंद की लेखनी से ही हिन्दी साहित्य में प्रथम दलित हस्तक्षेप की पद्चाप सुनाई पड़ती है। मनोरंजन और कल्पना के दामन को छोड़कर उनकी कहानियां यथार्थ से साक्षात्कार करती हैं। प्रेमचंद ने पंचपरमेश्वर, नमक का दारोगा, ईदगाह, पूस की रात, आदि जैसी कालजयी कहानियां हिन्दी साहित्य को दी हैं। साथ ही उन्होंने कहानी के कथ्य एवं शिल्प में भी दूरगामी परिवर्तन किया है। ठाकुर का कुआँ, दूध का दाम, घासवाली, सद्गति, मुक्ति मार्ग और कफ़न जैसी कहानियों में वे दलितों पर होने वाले अत्याचारों को प्रमुखता से चित्रण करते हैं। यह मात्र एक संयोग ही है कि "प्रेमचंद की पहली रचना भी दलितों से संबद्ध है और प्रेमचंद की अंतिम रचना भी दलितों से संबद्ध है।"[2] निःसंदेह प्रेमचंद हिन्दी के प्रथम रचनाकार है जिन्होंने दलित समाज का व्यापक चित्रण किया है, परन्तु यहां मूल प्रश्न यह है कि क्या प्रेमचंद दलित चेतना के रचनाकार हैं अथवा नहीं ? या उन्होंने मात्र गांधीजी द्वारा प्रदत्त वर्णव्यवस्था के आधुनिक मॉडल को ही अपने साहित्य के माध्यम से स्थापित करने का प्रयास किया। सच तो यह है कि दलित समाज से संबंधित प्रेमचंद की रचनाएं आज भी दलित विमर्श के केन्द्र में हैं और इस विषय पर आलोचकों के अनेक गुट बन गए हैं। 'अनुभूति की प्रमाणिकता' वर्तमान हिन्दी दलित साहित्य–समीक्षा का मुख्य प्रतिमान माना जाता है साथ ही दलित आलोचकों के एक वर्ग का यह भी मानाना है कि दलित रचनाकर ही दलितों का जीवन प्रमाणिकता के साथ अभिव्यक्त कर सकता है। इस प्रतिबद्धता से रचा गया साहित्य सहानुभूतिपरक न होकर परिवर्तन के उदात्त भावों से प्रेरित होता है जो भारतीय समाज की मूलभूत सामाजिक जरूरत है। इस पूरे विमर्श ने प्रेमचंद को दलित चेतना का रचनाकार मानने से इनकार कर दिया है, जिसमें प्रखर दलित आलोचक ओमप्रकाश वाल्मीकि, कंवल भारती, डॉ. धर्मवीर एवं श्योराज सिंह 'बेचैन' आदि प्रमुख

है। प्रेमचंद की 'कफ़न' ही वह कहानी है जिसके आधार पर प्रेमचंद पर अनेक प्रहार हुए हैं। कहीं वे 'सांमत के मुंशी' कहे गए तो कहीं 'दलित विरोधी'। कहानी 'कफ़न' पर बात करते समय दलित आलोचकों की भाषा तल्ख हो जाती है। 'कफ़न' में चमार समुदाय को जिस प्रकार से आलसी एवं क्रूर दिखाया गया है उसके प्रति हिन्दी दलित आलोचकों में व्यापक रोष है। इसी क्रम में कंवल भारती अपना विरोध दर्ज करते हुए लिखते हैं कि "यद्यपि इस कहानी से यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि प्रेमचंद को दलितों के जीवन से सहानुभूति नहीं थी परन्तु इस तथ्य को भी नकारा नहीं जा सकता कि प्रेमचंद ने इस कहानी में दलित जीवन का माखौल उड़ाया है ....गरीब और जाहिल दलित भी ऐसा अमानवीय आचारण नहीं कर सकता, जैसा घीसू और माधव से प्रेमचन्द ने कराया है ...यही कारण है कि कफ़न एक घटिया कहानी ही नहीं है वह दलित विरोधी भी है।"[3]

बहरहाल यह गंभीर साहित्यिक विमर्श का विषय है। दलित साहित्य की दृष्टि से प्रेमचंद के कथा साहित्य का महत्व इस बात को लेकर स्वीकार किया जा सकता है कि जब हिन्दी का छायावाद युग तथाकथित स्वर्णिम अतीत का पुनराख्यान कर रहा था उस घोर वर्णव्यवस्था के सामंती वातावरण में प्रेमचंद उत्तर भारत के दलित समुदाय को अपनी कहानियों में पर्याप्त स्थान देने के प्रयास में जुटे थे। प्रेमचंद के रचना कर्म को वर्तमान दृष्टि से देखने की अपेक्षा उनके समकालीन उत्तर भारत के सनातनी परिप्रेक्ष्य में देखना अधिक उचित होगा। प्रेमचंद के दलित पात्र भी अपने अधिकार के लिए विद्रोह करते हैं। हिन्दी की मासिक पत्रिका 'चांद', मई 1927 के अंक में प्रकाशित कहानी 'मंदिर' की दलित स्त्री पात्र सुखिया अपने बेटे जियावन की मनौती को पूरा करने के लिए मंदिर जाती है। पुजारी द्वारा मना करने पर वह आधी रात में मंदिर के दरवाजे पर लगे ताले को तोड़ देती है। "सुखिया चबूतरे के नीचे से एक ईट उठा लाई और जोर–जोर से ताले पर पटकने लगी, उसके हाथों में न जाने इतनी शक्ति कहां से आ गई थी। दो तीन चोटों में ताला और ईट दोनों टूट कर चौखट पर गिर पड़े।"[4]

सुखिया द्वारा उठाया गया यह कदम यथास्थितिवादी नहीं कहा जा सकता है। यह अत्याचार के प्रति बदलाव का एक सकारात्मक संदेश है। एक अन्य कहानी 'दूध का दाम' में बालक मंगल अपने अधिकार की बात करता है। महेश बाबू का पुत्र सुरेश मंगल के साथ 'सवार–सवार' खेलने का प्रस्ताव रखता है–

"सुरेश ने कहा .....चल, हम लोग सवार–सवार खेलेंगे। तू घोड़ा बनेगा, हम लोग तेरे ऊपर सवार करके दौडायेंगे।

मंगल ने शंका की– मैं बराबार घोड़ा ही रहूँगा, कि सवारी भी करूँगा ? यह बता दो।

यह प्रश्न टेढ़ा था। किसी ने इस पर विचार न किया था। सुरेश एक क्षण विचार करके कहा– तुझे कौन अपनी पीठ पर बैठाएगा, सोच ? आखिर तू भंगी है कि नहीं ? मंगल भी कड़ा हो गया। बोला– मैं कब कहता हूँ कि मैं भंगी नहीं हूँ, लेकिन तुम्हें मेरी ही माँ ने अपना दूध पिलाकर पाला है जब तक मुझे भी सवारी करने को न मिलेगी, मैं घोड़ा न बनूँगा। तुम लोग बड़े चघड़ हो। आप तो मजे से सवारी करोगे और मैं घोड़ा ही बना रहूँ।"[5] बालक मंगल का यह कथन सम्पूर्ण ब्राह्मणवादी व्यवस्था के सम्मुख प्रश्नचिह्न खड़ा करता है। प्रेमचंद के इस हौसले की प्रशंसा लगभग सभी दलित आलोचक करते हैं।

इस युग के दूसरे प्रमुख बड़े कहानीकार जयशंकर प्रसाद हैं। प्रेमचंद के समकालीन होते हुए भी वे अपने लिए अलग राह बनाते हैं। उदात्त प्रेम की कल्पनामयता, भावुकता और समकालीन जीवन से विमुखता उनकी कहानी की प्रमुख विशेषता है। 'आकाशदीप', 'पुरस्कार' आदि कहानियों का निर्माण इतिहास के परिप्रेक्ष्य में हुआ है। राजव्यवस्था, वर्णव्यवस्था एवं सामंती समाज को पोषित करने वाली इन कहानियों में समाज के सामान्य जन, उपेक्षित पिछड़ा वर्ग नितान्त नदारद हैं। एक तरह से इन कहानियों में सामंती समाज को ही भव्य रूप में पेश किया गया है। भाषा की दृष्टि से संस्कृतनिष्ठ तत्सम प्रधान शैली उनकी कहानियों की भाषिक विशेषता है जो काल्पनिक, मनोरम, अदृश्य समाज की सृष्टि करने में पर्याप्त रूप से सक्षम हैं।

प्रेमचंद युग में ही प्रगतिवादी विचारधारा का हिन्दी साहित्य में आगमन होता है। वह किसान, मजदूर और दलितों की समस्याओं को साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्त करता है लेकिन प्रगतिवादी विचारधारा किसान, मजदूर और दलितों में चेतना भरने में असफल रहा है।

हिन्दी कहानी के विकास में नयी कहानी काल खण्ड एक टर्निंग प्वांइट है। नयी कहानी की समय सीमा का निर्धारण करते हुए मधुरेश लिखते हैं –"जिस काल खण्ड की कहानी को नयी कहानी कहकर स्थापित किया, इसे मोटे तौर पर सन् 54 से सन 63 की सीमाओं में बांधा जा सकता है।"[6] कथा की विषय वस्तु एवं शिल्प के क्षेत्र में नयी कहानी के रचनाकारों ने व्यापक परिवर्तन किया है। पात्र, चरित्र–चित्रण, आदर्शवाद, कथानक आदि रूढ़ियों को तोड़ते हुए नये कहानीकारों ने जीवन की जटिलताओं को यथार्थवादी ढंग से अभिव्यक्त किया है। बकौल मधुरेश "नई कहानी यथार्थ और जीवन की वास्तविकताओं के अंकन के आधार पर अपने को पिछली कहानी से अलग करती है। वह आदर्शों को और विचारों के आधार पर कहानी गढ़े जाने का विरोध करती है।... पहले की कहानी में कोई विचार सत्य या आइडिया लेखक के सामने कौंधता था और वह कुछ पात्रों, स्थितियों और घटनाओं के संयोग–संयोजन से उसे घटित या उद्‌घाटित कर देता था।"[7] जबकि नया कहानीकार "अधिक जटिल यथार्थ को अभिव्यक्त करता है। नयी कहानी अधिक जटिल संश्लिष्ट और उलझी हुई हैं, उसमें वर्णन पर रचे हुए कथानक पर नहीं बल्कि विश्लेषण पर किसी विशिष्ट भावदशा के चित्रण पर अधिक आग्रह है .....वह जीवन की किसी भी अनुभूति को अथवा उसके एक बिन्दु एक विशुद्ध मनः स्थिति घटना भावदशा अथवा विचार को लेकर कहानी लिख सकता है और लिखता है।"[8]

सन् साठ के बाद यह तस्वीर और अधिक साफ हो जाती है जब आजादी के सुनहरे वादों का स्वप्न पूरी तरह भंग हो जाता है। अब स्पष्ट हो गया है। कि शासक वर्ग के मात्र चेहरे ही बदले हैं, कार्य प्रणाली यथावत ही रही है। घोर बेरोजगारी और उससे उत्पन्न तनाव से समान्य व्यक्ति आंतरिक रूप से खोखला हो जाता है। दैनिक

समस्याओं से उलझते–उलझते मानसिक कटुता मानव के जीवन में स्थाई रूप से घर कर जाती है। इसका सबसे ज्यादा प्रभाव परिवार नामक संस्था पर पड़ता है। अब संयुक्त परिवार के विघटन के चिह्न समाप्त हो जाते हैं उसके स्थान पर आया एकल परिवार भी शीघ्र ही खोखला साबित होता हैं और वे भी टूटने के कगार पर पहुंच जाता है। मोहन राकेश ने इस टूटते हुए एकल परिवार की संवेदना को सटीक ढंग से अभिव्यक्त किया है। स्वाधीनता के पश्चात भारतीय समाज में स्वतन्त्रता का मुहावरा तीव्र गति से प्रचलित होता है। महिलाएं शिक्षा के साथ–साथ रोजागार के क्षेत्रों में भी अवसर तलाशने लगती हैं। आर्थिक रूप से स्वावलम्बित स्त्रियां स्वतंत्रता की कामना से उन्मुक्त होकर स्वतंत्र आचारण करती हैं। परम्परागत रूप से बंधा हुआ रूढ़ि ग्रस्त भारतीय समाज नारी की इस स्वतंत्रता को बर्दाशत नहीं कर पाता है परिणामस्वरूप स्त्री और पुरूष दोनों के स्वाभिमान की टकराहट शुरू हो जाती है, जिसका सीधा प्रभाव स्त्री–पुरूष के वैवाहिक संबंधों पर भी पड़ता है। इस दौर में रची गई अनेक कहानियों में यह टकराहट देखी जा सकती है। पारिवारिक तनाव, बाह्य प्रेम संबंध, पारिवारिक विघटन आदि जैसी घटनाएं आधुनिक कहे जाने वाले समाज में घटती हैं। मोहन राकेश की प्रसिद्ध कहानी 'एक और जिंदगी' में इस प्रकार का तनाव व्यक्त हुआ है। कामकाजी महिलाओं की समस्या को उजागर करती मोहन राकेश की कहानी 'मिस पाल' की नायिका मिस पाल अपने दफ्तर में होने वाली छीटाकशी से बेहद पेरशान नज़र आती है। पुरूष सहकर्मियों द्वारा व्यंग्यात्मक लहजे में की गई टिप्पणी मिस पाल की मानसिक त्रासदी का कारण बनती है, आखिर वह नौकरी छोड़ देती है। आधुनिकता के इस दौर में स्त्री एक ओर जहां घर की चारदीवारी से बाहर आती है वहीं दूसरी ओर रोजगार के क्षेत्र में पुरूषों के साथ काम करने से उत्पन्न होने वाली समस्याएं, स्त्रियों के मानसिक तनाव का प्रमुख कारण बनता है जिसका सीधा प्रभाव परिवारिक जीवन पर पड़ता है। स्त्री–पुरूष के संबंधों को लेकर आगे के कहानीकारों ने इस प्रकार की मनोवृति वाले पात्रों की सृष्टि की है।

सुप्रसिद्ध कथाकार मन्नू भंडारी की कहानियां नारी मन की भयावह परिस्थियों को उजागर करती हैं। विवाह के पश्चात् नौकरीशुदा विवाहित महिलाओं की समस्याओं, उनके अंतःमन की वेदना, परिवार एवं कैरियर के बीच निरन्तर चलने वाली टकराहटें सजीव रूप से उनकी कहानियों में व्यक्त हुई हैं। काम का दबाव और साथ ही पति के साथ समय बिताने का दबाव, बच्चों के प्रति जिम्मेदारियों के बीच संघर्ष करती महिला कभी–कभी पुरूषों के अकारण शंका का कारण भी बनती हैं। मन्नू भंडारी की कहानियां– 'तीसरा आदमी', 'नई नौकरी', 'बन्द दराजों' तथा 'त्रिशंकु' आदि में नारी मन के विविध कोणों को दर्शाया गया हैं। 'तीसरा आदमी' का पात्र सतीश अकारण ही अपनी पत्नी शकुन पर अविश्वास करता है और मन ही मन व्यथित होता रहता है। शकुन पुरानी सीमाओं को लांघ कर परपुरूष के साथ बिना किसी झिझक के मुक्त संवाद करती है। सतीश शकुन का यह मुक्त व्यवहार बर्दाशत नहीं कर पाता है, लेकिन सच्चाई सामने आने पर उसे ग्लानी होती है। 'नई नौकरी' की रमा कॉलेज में पढ़ाने के साथ–साथ घर के भी सभी काम करती है, लेकिन पति कुन्दन की गृहस्थी को सहजने के लिए उसे नौकरी छोड़नी पडती है। वह विरोध नहीं कर पाती है, एक ओर घर की जिम्मेदारी वहीं दूसरी ओर कक्षा के लेक्चर तैयार करना, वह दोनों में तालमेल नहीं बिठा पाती है। रमा छात्रों के साथ अधिक समय तक छल करने में असमर्थ है। अंत में रमा निर्णय करती है– "यह रवैया मेरे बस का नहीं है कितना गिल्टी फील करती हूँ बिना तैयारी किए पढ़ाना लगता है। जैसे लड़कियों को चीट कर रही हूँ दो घण्टे का समय भी तो मुझे अपने लिए नहीं मिलता।"[9] वह नौकरी छोड़ देती है। आर्थिक रूप से सम्पन्न होने के बाद भी व्यक्तिगत जीवन का विघटन उनकी कहानियों की प्रमुख विशेषता है। 'बंद दराजों के साथ' कहानी की मंजरी अपने पति के विवाहेतर संबधों के कारण तलाक ले लेती है और दूसरा विवाह करने के दस वर्ष पश्चात भी मंजरी का व्यक्तित्व खंडित ही रहता है। वह दिलीप के साथ रहते हुए भी पूर्व पति विपिन की स्मृतियां उसे वेदना पहुंचाती हैं। "जब–तब विपिन भी याद आने लगा और आश्चर्य यह कि उसका यों याद आना अब उतना बुरा भी नहीं लगता फिर

भी वह इस अहसास से मुक्त नहीं हो पाती कि विपिन ने केवल अपनी जिन्दगी को ही टुकड़ों में नहीं काटा, कितने कौशल से वह उसकी जिन्दगी को भी टुकड़ों में काट गया है कि आगे उसे सारी जिन्दगी ही इन टुकड़ों की अभिशप्त छाया में काटनी होगी कि वह अब भी अपनी सम्पूर्ण जिंदगी नहीं जी पाएगी।"[10]

हिन्दी कहानी लेखन में प्रेमचंद ने दलित समाज का व्यापक चित्रण किया था। उन्होंने नये कहानीकारों को एक प्रकार से व्यापक विषय सौंपा, लेकिन आने वाली कथाकारों की पीढ़ियों ने इस विषय पर गंभीरता से विचार नहीं किया और कभी वामपंथी तो कभी व्यक्तिवाद के नाम पर कहानी की दिशा अपनी इच्छानुसार परिवर्तित करते रहे। यद्यपि आने वाले युग में निरंतर दलितों की समस्या भारतीय राजनीति के केन्द्र में किसी न किसी रूप में अवश्य ही रही थी, परन्तु नयी कहानी के कथाकारों ने इस गंभीर विषय को अनदेखा कर व्यक्तिवादी समस्याओं में ही उलझे रहे। इस दौर में अच्छी कहानी लिखने के बाद भी दलित चेतना की कहानी नहीं के बराबर मिलती है। नयी कहानी के बाद हिन्दी कहानी के विकास में सचेतन कहानी, अ–कहानी, समान्तर कहानी और जनवादी आदि कहानी आंदोलन चले पर दलितों की समस्यों को इन आंदोलनों ने नोटिस तक नहीं लिया।

हिन्दी दलित कहानी

हिन्दी दलित साहित्य का उद्‌भव एवं विकास के प्रश्न को लेकर साहित्यकारों में वैचारिक मतभेद है, परन्तु वास्तविकता यह है कि इस मतभेद को जन्म देने वाले वे गैर दलित आलोचक हैं जो अभी तक भाषागत संकीर्णता से ऊपर नहीं उठ पाए हैं। हिन्दी भाषा का साहित्य सम्पूर्ण भारतीय भाषा के साहित्य से पृथक नहीं हो सकता है। हिन्दी साहित्य के इतिहासकार आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के आलोचना कर्म की यही सबसे बड़ी भूल थी, कि उन्होंने हिन्दी साहित्य को भारतीय भाषाओं के साहित्य से अलग करके देखा था। इस विषय का सबसे अधिक दुःखद पहलू यह है कि आज तक यह परम्परा जस की तस चली आ रही है और प्रबुद्ध हिन्दी आलोचकों ने इस गलती को दुरूस्त

करने के स्थान पर इसका पिष्टपोषण ही किया है। हिन्दी दलित साहित्य की स्थिति इससे अलग है, परन्तु जब गैर दलित आलोचक हिन्दी दलित साहित्य को भी भाषागत संकीर्णता के रूप में देखने का प्रयास करते हैं तब उन्हें निराशा होती है। मराठी दलित साहित्य को आन्दोलन की उपज और हिन्दी दलित साहित्य को आरक्षण की उपज कहने का दुस्साहस वे लोग ही कर सकते हैं जिनका ज्ञान संकुचित है। वास्तव में साहित्य का अस्तित्व स्वायत्त नहीं होता है। विविध प्रकार की भाषाओं के साहित्य में एक प्रकार का अन्तःसंबंध होता है। यह अन्तःसंबंध कहीं ज्यादा तो कहीं कम होता है, किन्तु इस विषय का यह सुखद पहलू है कि दलित साहित्य का स्वरूप न केवल अखिल भारतीय है, बल्कि उसकी संवेदनाएं देश–काल की सीमाओं का भी अतिक्रमण करती हैं। यह वास्तविकता है कि हिन्दी दलित साहित्य स्पष्ट रूप से मराठी दलित साहित्य से प्रभाव ग्रहण कर विकसित हुआ है, परन्तु यह हिन्दी दलित साहित्य की अयोग्यता का पैमाना नहीं है, बल्कि दलित साहित्य की व्यापकता का द्योतक है यद्यपि "मराठी में 1960 के आसपास दलित साहित्य की धारा शुरू हुई थी।"[11] इसके विकास का प्रमुख कारण दलित पत्रिकाएं थीं। महाराष्ट्र में दलित पत्रिकाओं का विकास हिन्दी दलित पत्रिकाओं की तुलना में तीव्र गति से हुआ। "आधुनिक मराठी दलित साहित्य का वाहक सबसे पहले बनी 'प्रबुद्ध भारत' पत्रिका, जो 1960 के आसपास शुरू हुई व जो रिपब्लिकन पार्टी का मुख पत्र बनीं।"[12] हिन्दी की साहित्यिक पत्रिकाओं की स्थिति मराठी की तुलना में भिन्न थी। यहां की पत्रिकाओं पर गैर दलित संपादकों का एकाधिकार रहा है, साथ ही इस तथ्य को भी नहीं नकारा जा सकता है कि साठ के दशक में हिन्दी दलित कथाकार स्वतंत्र पत्रिका निकालने के लिए आर्थिक रूप से मजबूत नहीं थे। दलित कथाकारों को निरन्तर गैर दलित संपादकों पर निर्भर रहना पड़ता था। व्यक्तिगत योग्यता होने के बाद भी गैर दलित–आधिपत्य के प्रकाशन संस्थानों ने दलित रचनाओं को एक सिरे से नकाराना आरंभ कर दिया था इसलिए ओमप्रकाश वाल्मीकि को यह अकारण नहीं लगता कि "सहित्य के भीतर भी एक सत्ता है जो अंकुरित होते पौधों को कुचल देती है।"[13] स्वयं वाल्मीकि जी की आदिवासी

पृष्टभूमि पर आधारित कहानी 'जंगल की रानी' दस वर्ष तक (1980–90) 'सारिका पत्रिका' के सम्पादकीय विभाग में अटकी रही थी।

प्रखर दलित आलोचक कंवल भारती का मानना है कि हिन्दी और मराठी दलित साहित्य का उदय एक साथ ही हुआ था। "दलित साहित्य का उदय हिन्दी और मराठी में लगभग एक ही समय हुआ है। हिन्दी में साठ के दशक में चंद्रिका प्रसाद जिज्ञासु दलित चेतना के साहित्य के प्रवर्तक हैं। इसकी शुरूआत कविता से ही हुई। कविता और गद्य में दलित चेतना की बेहतरीन पुस्तकें इसी समय प्रकाशित हुई। जिनमें चंद्रिका प्रसाद जिज्ञासु, ललई सिंह यादव, डॉ. अंगने लाल, सुन्दर लाल सागर, डॉ. डी. आर. जाटव ...आदि लेखकों की पुस्तकों के साथ–साथ डॉ. अम्बेडकर, भदंत आनंद कौसल्यायन, राहुल सांकृत्यायन, अछूतानन्द और रामास्वामी नायकर की क्रान्तिकारी पुस्तकों का प्रकाशन हुआ। इस साहित्य को यद्यपि 'दलित साहित्य' का नाम नहीं मिला था, पर इन लेखकों की किताबों ने एक सशक्त दलित विमर्श को उभारा था .... हिन्दी में उन पुस्तकों को पढ़कर ही नए दलित लेखकों की जमात पैदा हुई थी जो आज दलित साहित्य के प्रख्यात हस्ताक्षर हैं।"[14] परन्तु फिर भी इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि दलित पत्रिका न होने का खामियाजा हिन्दी दलित साहित्य को उठाना पड़ा था। मराठी दलित साहित्य एवं हिन्दी साहित्य एक दूसरे के प्रतियोगी न होकर पूरक एवं सहयोगी हैं। गैर दलित आलोचकों द्वारा हिन्दी दलित साहित्य को मराठी दलित सहित्य की तुलना में कमजोर कहना, वास्तव में मराठी दलित साहित्य के माध्यम से हिन्दी दलित साहित्य पर प्रहार करना है। दोनों ही भाषाओं के साहित्य ने अपनी भाषा में लिखित पारम्परिक, अलौकिक, दैवीय साहित्य को नकार कर उपेक्षित वंचित दलित समाज को साहित्य के केन्द्र में स्थापित किया है।

हिन्दी दलित कहानी की जमीन व्यापक परिप्रेक्ष्य से संबद्ध है। इसके मूल में भारत का असंख्य शोषित समुदाय एवं उनकी समस्याएं हैं जिन्हें सवर्ण रचनाकारों ने कभी नोटिस में नहीं लिया है और यदि कहीं ये जातिगत शोषण से उत्पीड़ित निम्न वर्ण जनसामान्य की दृष्टि में आए भी तो उनका स्वरूप दीन–हीन, चेतना रहित ही

था। व्यापक समाजिक बदलाव की प्रेरणा उनकी अनिवार्य विशेषता बनकर नहीं उभर पाती है। कहने का तात्पर्य यह है कि जो विषय वस्तु सवर्ण कथाकार के लिए प्रिय है वही दलित रचनाकार के लिए असहनीय है। मसलन, भारतीय ग्रामों का महिमागान, मनोरंजन, गौरवर्णीय स्त्री का सौन्दर्य वर्णन, भाषा का कलात्मक सौन्दर्य आदि। हिन्दी दलित कहानियां सवर्ण कथाकारों की रचना के सर्वथा विपरीत समाजिक परिदृश्य को उभारती हैं जहां समता और श्रम की संस्कृति फल–फूल रही है। हिन्दी दलित कहानियां व्यक्तिवादी रोना–धोना छोड़कर दलितों की समस्याओं के निराकरण का साधन बनती हैं। सदियों की पीड़ा सहने के बाद उससे उपजी विद्रोह की भावना और समाजिक बदलाव, दलितोत्थान, समता की स्थापना दलित कहानियों का मुख्य ध्येय है। मोहनदास नैमिशराय की कहानी 'अपना गांव', सूरजपाल चौहान की कहानी 'साजिश', जयप्रकाश कर्दम की कहानी 'नो बार', पुरूषोत्तम सत्यप्रेमी की कहानी 'प्रतिशोध' आदि में वर्ण व्यवस्था पर घातक प्रहार किया गया है। समग्र रूप से देखने पर जान पड़ता है कि हिन्दी दलित कहानी शिक्षा पर अधिक बल देती है। शिक्षा का महत्व दलित समाज में व्यापक रूप से स्वीकार किया जा रहा है। गुलामी की जंजीरों को तोड़ने का इससे उपयुक्त माध्यम और कोई हो भी नहीं सकता है। स्कूली शिक्षा प्राप्त करने के बाद ही ओमप्रकाश वाल्मीकि का पात्र सुदीप 'पच्चीस चौका डेढ़ सौ' के मिथक को तोड़ता है। सुशीला टाकभौरे की सिलिया भी खूब पढ़ती है। वह जानती है कि शिक्षित होने के बाद ही वह मैला ढोने जैसी कुप्रथा से मुक्त हो पाएगी, परन्तु वहीं दूसरी ओर रामसहाय शर्मा जैसे बैंक मैनेजर हैं जो जबरन दलितों को पुश्तैनी काम में लगाए रखने की 'साज़िश' रचते हैं और पढ़े लिखे नत्थू को 'पिगरी फार्म' खोलने भी सलाह देते हैं। दलित कहानी दलित समाज में चेतना जगाने का सशक्त माध्यम है। दलित स्त्री–पात्र स्त्री–शोषण का पुरजोर विरोध करती है। वर्षों से चली आ रही 'बहूजुठाई की परम्परा' समाप्त हो जाती है। अब गांव का ठाकुर दलित नवविवाहिता की डोली को देखकर भय खाता है। देवदासी और बहूजुठाई जैसी समस्याओं को पहली बार भारतीय साहित्य में दलित लेखन के माध्यम से उठाई गयी है। दलित

कहानीकार प्रेम कपाड़िया ने 'हरिजन' कहानी लिख कर पहली बार देवदासी के नाम पर हो रहे दलित स्त्रियों की शोषण की समस्या को एक पुत्र पात्र के रूप में उठाया है। कथा का प्रमुख पात्र प्रेम एस. एस. पी. बनकर मध्य प्रदेश एक छोटे से गांव में जाता है वहां उसके जाने का एक मात्र उद्देश्य हिन्दू मंदिरों में देवदासी के नाम पर हो रहे गरीब दलित महिलाओं के शोषण के रैकेट का भाड़फोड़ करना है। प्रेम की माता ने एक देवदासी के रूप में अपना जीवन निर्वाह किया था। वह अपने बच्चपन में घटित उन घटनाओं को याद करके रो पड़ता है कि किस तरह मंदिर के पंडित भोजन के लिए उसकी मां का शोषण करते हैं। बालक प्रेम प्रसाद की थाली से पूरियां और लड्डू लेकर तख्त के अंदर से वह सब चुपचाप देखता रहता था। प्रेम कपाड़िया दलित समस्या का इतना जीवन्त वर्णन करते हैं कि जिसे पढ़ कर सम्पूर्ण हिन्दू धर्म–व्यवस्था के प्रति विद्रोह का भाव उमड़ने लगता है। हिन्दी साहित्य में इस प्रकार की कहानियां दुर्लभ ही है। इन सभी कहानीकारों ने मिल कर हिन्दी दलित कहानी को नये विचारों एवं भाषा से संम्पन्न किया है। जिसकी पृष्ठभूमि गैर दलित रचनाकारों से नितांत भिन्न है।

संदर्भ स्रोत

1. गुलाब राय, काव्य के रूप, आत्माराम एण्ड सन्स, 1999, दिल्ली, पृ.192
2. दलित साहित्य की अवधारणा और प्रेमचंद, (सं.) सदानन्द शाही, प्रेमचंद साहित्य संस्थान, 2000, गोरखपुर पृ. 57
3. वही पृ. 89–90
4. प्रेमचंद ग्रंथावली–14, (सं.) सुनीता शर्मा, भारती भाषा प्रकाशन, दिल्ली, 2001, पृ. 131
5. मानसरोवर भाग–2, प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली 2006, पृ.150
6. मधुरेश हिन्दी कहानी का विकास, सुमित प्रकाशन, इलाहाबाद, 2004, पृ. 61
7. वही पृ.62
8 नयी कहानी :संदर्भ और प्रकृति, (सं.) डॉ देवी शंकर अवस्थी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2002, पृ.119
9. मन्नू भण्डारी, दस प्रतिनिधि कहानियां, किताब घर, दिल्ली, 1994, पृ. 54
10. वही पृ. 80
11. वसुधा (पत्रिका), अंक 58, जुलाई–सितम्बर, 2003, पृ. 58
12. समकालीन भारतीय साहित्य (पत्रिका), मई–जून, 1998, पृ. 156
13. ओम प्रकाश वाल्मीकि, जूठन (आत्मकथा), राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 2006, पृ.147
14. कंवल भारती, दलित विमर्श की भूमिका, इतिहासबोध प्रकाशन, दिल्ली, 2007, पृ.123

अध्याय दो

दलित कथा लेखन एवं ओमप्रकाश वाल्मीकि की कथा दृष्टि

दलित साहित्य दलित समाज की चेतना का साहित्य है। भारतीय समाज में सैकड़ों वर्षों से उपेक्षित, शोषित एवं तिरस्कृत दलित समाज की व्यथा की अभिव्यक्ति पहली बार दलित साहित्य के माध्यम से हुई है। भारतीय साहित्य में दलितों का जीवन सदैव उपेक्षित रहा है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की उदात्त भावना से ओत–प्रोत तथाकथित मुख्यधारा के साहित्य में दलित समाज की सच्चाई नहीं झलकती और यदि कहीं भारतीय वाङ्मय में दलित समाज का चित्रण किया भी गया तो वहां यथास्थितिवादी दृष्टि ही प्रधान रही है। सम्पूर्ण भारत में दलितों पर होने वाले अत्याचारों का स्वरूप कमोबेश समान होने के कारण शीघ्र ही लगभग सभी भारतीय भाषाओं में दलित साहित्य का जन्म हुआ, यद्यपि राजनीतिक, सामाजिक, शैक्षिक एवं आर्थिक परिस्थितियों के अनुसार भिन्न–भिन्न भारतीय भाषाओं में कुछ वर्षों का अंतर हो सकता है। हिन्दी साहित्य में सत्तर–अस्सी के दशक से ही दलित साहित्य की पदचाप सुनाई पड़ती है। ब्राह्मणवादी वर्चस्व से ओत–प्रोत हिन्दी साहित्य में दलित साहित्य की अवधारणा ने पूर्व प्रचलित साहित्यिक मान्यताओं को ध्वस्त करते हुए अपनी अलग राह बनाई है। कविता, कहानी, आत्मकथा, नाटक एवं उपन्यास आदि विधाओं के माध्यम से हिन्दी दलित रचनाकार दलित समाज का जीवन हिन्दी साहित्य में स्थापित करने के लिए प्रयासरत है। पिछले लगभग 25–30 वर्षों के अथक प्रयासों से दलित रचनाकारों ने अपनी कृतियों के द्वारा हिंदी दलित साहित्य का नया साहित्यिक प्रतिमान गढ़ा है। निःसंदेह इस कार्य में कहानी, आत्मकथा एवं कविता आदि विधाएँ अभिव्यक्ति की सशक्त माध्यम बनी हैं।

दलित साहित्य के जन्म से पूर्व यद्यपि हिंदी कहानी में दलित समाज का चित्रण हुआ है, परन्तु सवर्ण रचनाकारों ने दलित समाज की यथास्थिति का ही पोषण किया है। दलित पात्र अपने ऊपर होने वाले अत्याचारों को मूक भाव से सहता आया है, वह

विरोध करने की स्थिति में नहीं था। इन कहानियों के सवर्ण पात्र मनुवादी व्यवस्था के प्रतीक के रूप में ही चित्रित हुए हैं। भारतीय साहित्य के विशाल फलक पर दलित साहित्य की उपस्थिति ने गैर दलित साहित्य की परम्परागत दृष्टि के प्रति नकार एवं विद्रोह व्यक्त किया। मराठी के पश्चात् हिंदी साहित्य में दलित कहानी का विकास तीव्र गति से हुआ है, यद्यपि आरंभिक दौर में कविताएं लिखी गईं, लेकिन शीघ्र ही अनेक दलित रचनाकारों ने कहानी विधा में लिख कर हिन्दी दलित कहानी को समृद्ध किया। ओमप्रकाश वाल्मीकि का कहना है कि "सातवें दशक से अनेक दलित रचनाकारों ने दलित कहानी विधा को अपनाया।"[1] साथ ही वाल्मीकि जी नए दलित रचानाकरों की समस्या को रेखांकित करना भी नहीं भूलते "उस दौर की कहानियों को हिंदी सम्पादकों ने प्रकाशित करने में विशेष रूचि नहीं दिखाई।"[2] सवर्ण सम्पादकों का उपेक्षा पूर्ण व्यवहार दलित रचनाकारों का हौसला पस्त नहीं कर सका। ओमप्रकाश वाल्मीकि, सूरजपाल चौहान, विपिन बिहारी, मोहनदास नैमिशराय, सुशीला टाकभौरे, रजत रानी मीनू, एवं अनिता भारती, आदि दलित कहानीकारों ने हिंदी कहानी की दिशा और दशा दोनों को उलट दिया। और कल्पना एवं मनोरंजन के बदले साहित्य वास्तविक अर्थ में समानता एवं बंधुत्व की स्थापना के लिए प्रतिबद्ध हुआ। दलित कहानीकारों ने परम्परागत 'यथार्थ' को नकारते हुए भारतीय समाज का वह यथार्थ दिखाया, जिससे हिंदी साहित्य अब तक अनजान था। 'सलाम', 'घुसपैठिए', 'हैरी कब आएगा' , 'अनुभूति के घेरे', 'आवाजें' , एवं 'आधे पर अंत' आदि दलित कहानी संग्रहों ने मनुष्य के रोगंटे खड़े कर देने वाले दलितों के जीवन को जिस यथार्थ रूप में रखा है, उस यथार्थ की परिभाषा ने परम्परागत 'यथार्थ' शब्द की परिभाषा को खंडित कर दिया है। ओमप्रकाश वाल्मीकि दलित कहानी की शुरूआत आठवें दशक से मानते हुए लिखते हैं कि "यह एक बदलाव था हिन्दी कहानी के लिए जिसमें यथार्थवादी चित्रण और मध्यवर्गीय जिजीविषा का बहुत ही निकटता से सम्बन्ध प्रस्तुत हुआ था और पाठकों ने कहानी के कल्पना लोक और रोमानी मायावी संसार से मुक्त होकर एक ताजगी का अहसास महसूस किया था। इसी के साथ दलित चेतना की कहानियों ने

TH-17818

अपनी उपस्थिति दर्ज की। आठवें दशक में यह उपस्थिति और अधिक तीव्रता से उभरी, लेकिन हिन्दी सम्पादकों और समीक्षकों के उपेक्षतापूर्ण रवैए के कारण दलित रचनाएं लगातार चर्चा से बाहर रहीं।''[3]

इस प्रकार ओमप्रकाश वाल्मीकि दलित कहानी के विकास की दृष्टि से आठवें दशक को महत्वपूर्ण मानते हैं क्योंकि इस कालखण्ड में भारी संख्या में नए रचनाकार उभर कर अपनी उपस्थिति दर्ज कराते हैं। ये रचनाकार दलित साहित्य को मजबूत आधार देने की कोशिश करते हैं। प्रत्येक रचनाकारों ने दलितों के जीवन की समस्याओं का विविध दृष्टिकोण से चित्रण किया है। नित–नवीन दलित कथा एवं पात्रों के चरित्रों की सृष्टि कर दलित रचनाकारों ने अपनी मौलिक सृजनात्मक शक्ति का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत किया है, साथ ही रचना के माध्यम से रचनाकारों ने दलित अस्मिता को हिंदी साहित्य में स्थापित किया है।

दलित कथा दृष्टि–

दलित कथा दृष्टि से तात्पर्य दलित रचनाकारों की वह विविध कथ्य दृष्टि है जिसे आधार बनाकर दलित कथा का सृजन हुआ है। इन कथाकारों ने दलितों के जीवन के विविध रूपों एवं संघर्षों को आधार बनाकर हिंदी दलित कहानी का सृजन कर, दलित कहानी विधा को समृद्ध किया है। इन प्रमुख रचनाकारों में ओमप्रकाश वाल्मीकि, मोहनदास नैमिशराय, सूरजपाल चौहान, सुशीला टाकभौरे, विपिन बिहारी आदि प्रमुख हैं।

मोहनदास नैमिशराय ने बाबा साहेब अम्बेडकर के विचारों को आत्मसात् कर दलित कथा में अपना विशिष्ट स्थान बनाया है। नैमिशराय जी की कहानियां दलित समाज के वैचारिकी का वाहक है जो युगों से शोषित, पीड़ित दलित समाज को अत्याचार एवं शोषण से मुक्ति के लिए संघर्षरत हैं। वे एक ओर जहां अन्याय का विरोध करते हैं वहीं दूसरी तरफ भविष्य के प्रति सजग हैं। मोहनदास जी ने दलितों की यथास्थिति में परिवर्तन की लहर को प्रमुखता से रेखांकित किया है। उनके पात्र युगों से धर्म एवं भाग्य के नाम पर थोपे गए अत्याचार का विरोध करते हैं।

कहानी संग्रह 'आवाजें' की पहली कहानी 'आवाजें' जागरूक दलित समाज को प्रकट करती है, जो संभवतः पहली बार तथाकथित सवर्णों के अत्याचारों के विरूद्ध एकजुट होकर निर्णय करती है, कि "हम जूठन न लेंगे और न ही गंदगी साफ करेंगे"[4]। मेहतर टोली द्वारा लिया गया यह निर्णय ब्राह्मणवादी वर्चस्व को चुनौती देता है। इससे न केवल ब्राह्मणवादी व्यवस्था अपितु उसको नियमित करने वाली मनुस्मृति के अस्तित्व पर भी संकट खड़ा हो जाता है अब ठाकुर चाहे लाख शास्त्रों की दुहाई दे– "भला सासतरों की बात कोई टाल सकता है क्या? सासतरों में तो यही सब लिखा है न।"[5] दलित समाज अपने ऊपर थोपे गए घृणित काम नहीं करेंगे।

भारतीय समाज की वर्णव्यवस्था जिसे धर्म का पूर्ण समर्थन प्राप्त है दलित वर्ग के लिए अभिशाप है। ब्राह्मण वर्ण ने अलौकिकता का भय दिखाकर, पाप–पुण्य की गलत व्याख्या कर शूद्र जाति को स्थायी रूप से गुलाम बना लिया था, परन्तु आज

बहुजन समाज अपने अस्तित्व एवं अस्मिता की स्थापना हेतु दृढ़ संकल्प है और दलित अपनी आजादी के लिए संघर्षरत है। दलित कथा की यह सर्वमान्य विशेषता है कि दलित कथा का पात्र एक स्वतंत्र व्यक्ति न होकर सम्पूर्ण दलित समुदाय का प्रतिनिधित्व करने वाला होता है। 'आवाजें' कहानी में ठाकुर का कारिंदा इतवारी के पास बार–बार आता है, लेकिन वो उसकी एक नहीं सुनता, मोहनदास ने दलित समाज का स्वाभिमान से भरा चेहरा प्रस्तुत कर दलित समाज को सकारात्मक संदेश दिया है। ठाकुर का कारिंदा इतवारी को 'तू' कह कर संबोधित करता है, अभी तक संबोधन का यह तरीका उसे बुरा नहीं लगा था, लेकिन आज यह संबोधन उसकी अन्तःआत्मा को भीतर तक बेध रहा है। वह उसका पुरजोर विरोध करता है। दलित कहानियों में दलित समाज की समस्याओं को उठाया गया है। अन्य दलित कथाकारों के समान नैमिशराय जी भी इन समस्याओं से जूझते हैं, साथ ही दलित स्त्रियों के शोषण की समस्या को भी अपनी कहानी के माध्यम से उठाते हैं। 'अपना गांव' कहानी में चमारों की बस्ती का युवक संपत ठाकुर से पांच सौ रूपए ऋण पर लेकर शहर जाता है। बीस दिन तक कोई खबर नहीं मिलने पर ठाकुर का कारिंदा संपत की पत्नी को जबरन अपने खेतों पर काम करने के लिए मजबूर करता है, लेकिन उसकी पत्नी कबूतरी मना करती है। एक दिन खेत में ठाकुर का मझला बेटा कबूतरी को अकेला देखकर जबरन अपने खेतों में काम कराने के लिए विवश करता है, विरोध करने पर उसके साथी उस पर झपट पड़ते हैं और निर्वस्त्र कर सारे गांव में घुमाते हैं। कबूतरी हाथ जोड़कर आंसू भरे नेत्रों से अपने वस्त्र मांगती है, लेकिन ठाकुर का लड़का निर्दयी पशु से भी ज्यादा कठोर होकर कबूतरी की लज्जा उतारता है। कर्ज के बहाने दलित स्त्रियों का शोषण करना ठाकुरों की परम्परा रही है। अन्य दलित स्त्रियां भी ठाकुर के शोषण का शिकार हुई हैं, समूचा गांव मूक दर्शक बनकर घृणित घटना को देखता है, बड़े–बूढ़े कोई प्रतिरोध नहीं करते हैं, जबकि दलित समाज की नई पीढ़ी ठाकुर के कुकृत्य का विरोध करती है। नैमिशराय जी ने नयी पीढ़ी के विरोध का सकारात्मक चित्रण किया है– "अचानक बीच में कोई युवक बोल उठता है पर ऐसे कब तक चलेगा? कल संपत की

घरवाली को नंगा किया आज किसी और की बहन बैट्टी को भी वे नंगा गांव में घुमा सकै हैं।"[6] गांव में विरोध का स्वर तीव्र हो जाता है। बड़े–बूढ़े और स्त्रियां पहली बार अपना विरोध प्रदर्शन करने की योजना बनाते हैं। गांव की सभी स्त्रियों ने इस समस्या का सामना किया था। "उसकी जात की बहुत कम औरतें ऐसी होंगी जिन्हें ठाकुरों और उनके लठैतों के बुलावे पर हवेली न जाना पड़ा हो एक–एक के बदन ने अनचाहे वह सब झेला था इसलिए गांव में कम उम्र की बेटियों के हाथ पीले कर उन्हें ससुराल भेज दिया जाता था जो बाहर से इस गांव में बहू बन कर आती थीं, उनके पहले दो–तीन साल अजीब से धर्म संकट में गुजरते थे। गांव में पहले से ही कुछ ऐसी परम्परा थी।"[7] नयी पीढ़ी इस परम्परा को बदलने के लिए प्रतिबद्ध है। संपत के शहर से लौटते ही चिंगारी आग का रूप धारण कर लेती है। शहर में अखबार के माध्यम से संपत को इस घटना की सूचना मिली थी। संपत गांव आते ही विस्तार से घटना की जानकारी प्राप्त करता है। गांव के लोगों के साथ वह ठाकुर के खिलाफ शिकायत लिखवाने के लिए पुलिस स्टेशन जाने की योजना बनाता है। गांव के लोग यह भली–भांति जानते हैं कि पुलिस ठाकुरों का ही पक्ष लेगी। संपत को विश्वास है कि पुलिस घटना की रिपार्ट अवश्य दर्ज करेगी, वह अम्बेडकर जयंती के कार्यक्रम में कई बार भाग ले चुका है। बाबा साहेब के शब्द उसके कान में गूंजते हैं– 'गुलामों को गुलामी का अहसास करा दो वे गुलामी की जंजीरें स्वयं तोड़ देंगे' संपत के विचारों से सहमत होकर गांव के ग्यारह लोग स्त्री/पुरूष आठ मील दूर थाने में रपट दर्ज करवाने जाते हैं। ब्राह्मणवादी व्यवस्था के पोषक थानेदार एवं सिपाही न केवल उनका अपमान करते हैं, बल्कि डंडों से पिटाई भी करते हैं।

बाबा साहेब अम्बेडकर ने लिखा है कि "भारत की राजधानी से लेकर गांवों तक पूरे प्रशासन पर हिंदू कुंडली मारे बैठा है। हिंदू सर्वशक्तिमान की तरह है, जो प्रशासन की शाख पर बैठा है और कोने–कोने में हाथ फैलाए हुए है। कहीं ऐसे सूराख नहीं जिसमें से घुसकर कोई पुरानी व्यवस्था का विरोधी गुजर सकें। कोई भी विभाग हो, राजस्व, पुलिस या न्याय जहां भी देखिए हिंदू जमे हुए हैं। यदि स्थापित व्यवस्था अब

भी चली आ रही है, तो इसका कारण है कि उसे सरकार के हिंदू अधिकारियों का अटूट समर्थन प्राप्त है। हिंदू अधिकारी अपनी योग्यता के आधार पर ही शासन नहीं कर रहे हैं। वे लोगों की उनकी जाति कुजाति को ध्यान में रखकर प्रशासन कर रहे हैं।"[8] उक्त कथन ब्राह्मणवादी वर्चस्व की बुनावट को स्पष्ट करता है। इस प्रकार की विडम्बना पूर्ण स्थिति में दलित न्याय से सदैव वंचित रहे हैं। नैमिशराय की कहानियों में मीडिया की रचनात्मक भूमिका देखने को मिलती है। निःसंदेह यह मीडिया का लोकतान्त्रिक रूप है जो हमें नब्बे के दशक के पश्चात दिखाई देता है, जब समाचार के केन्द्र में पूर्व निर्धारित घटनाएं एवं चेहरों के स्थान पर ग्रामीण व्यवस्था की समस्याओं को समाचार की सुर्खियों में लाया गया। भारतीय ग्राम दलित शोषण के प्रमुख केन्द्र थे, मीडिया ने उन समस्याओं को राष्ट्रीय स्तर पर रखने का काम किया। संपत के गांव की घटना समाचार पत्रों के माध्यम से शहर तक पहुंचती है। नवयुवक पत्रकार कबूतरी पर हुए अत्याचारों की जांच पड़ताल करते हैं। रिपोर्ट छपने पर पीड़ितों की मेडिकल जांच की जाती है, और ठाकुर के खिलाफ रिपोर्ट दर्ज होती है, परिवर्तन की लहर से दलित समाज में नई चेतना का संचार होता है।

छुआछूत की समस्या न केवल ग्रामीण क्षेत्रों में है, अपितु शहरों में निवास करने वाले शिक्षित समाज में भी व्याप्त है। परम्परागत कार्यों को छोड़कर सार्वजनिक कार्यालयों में काम करने वाले अस्पृश्यों को भी जातिगत दंश सहना पड़ता है। 'हारे हुए लोग' कहानी इसी प्रकार की समस्या को उजागर करती है। कहानी का पात्र चेतराम कुरील सरकारी कार्यालय में कार्यरत है। वह सेक्शन अफिसर के पद पर पदोन्नति पाकर शहर में आता है। सरकारी अधिकारी होने के बावजूद भी सवर्ण मकान मालिक अपना मकान चेतराम को किराए पर नहीं देते हैं। 'कुरील' शब्द का उच्चारण सुनते ही उसे अजीब–सी नज़रों से देखने लगते हैं– "अजी हमें क्या मतलब आप कलक्टर भी हैं। नौकरी करने से आदमी की जात तो नहीं बदल जाती। रहता तो वही है।"[9] चेतराम का मित्र रामकृपाल पांच वर्ष पूर्व शहर में आया था उसे भी इसी प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ा था। यह सभी घटनाएं आधुनिकता के गढ़े हुए मिथकों को तोड़

देती हैं। आज भी भारतीय समाज सड़ी–गली मान्यताओं के साथ चिपका हुआ है, जिन्हें वह किसी भी कीमत पर नहीं छोड़ना चाहता है। मोहनदास की कहानियों में एक तथ्य विशेष रूप से दृष्टिगत होता है कि उनके दलित पात्र शहर की ओर पलयान करते हैं। अथवा यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि वे पलायन के लिए विवश हैं। जाति व्यवस्था से मुक्त होने का, उन्हें यह एक सरल उपाय प्रतीत होता है। 'आवाजें' तथा 'रीत'' आदि कहानी के पात्र ग्रामीण सामंतवादी व्यवस्था को त्याग कर शहर की ओर पलायन करते हैं। 'रीत' कहानी का दलित पात्र बुलाकी की नव–विवाहिता फूलो को विवाह की प्रथम रात्रि में जमींदार का बुलावा आता है, विरोध करने पर जमींदार का कारिंदा फूलो को घसीट कर ले जाता है। मानसिक ग्लानि से पीड़ित फूलो का पति बुलाकी शहर चला जाता है। पांच वर्ष पश्चात गांव आने पर बुलाकी वे सभी कार्य करता है जो सवर्ण द्वारा दलितों के लिए प्रतिबंधित थे। बस्ती के लोगों को घोड़े पर बैठने की मनाही थी, चलते हुए गर्दन झुकाकर चलना पड़ता था, लेकिन "आज बुलाकी ने सभी रीति रिवाजों को मसल दिया था।"[10] वह कंधे पर दुनाली बंदूक रखे घोड़ी पर बैठकर आया था। गाने बाजे के साथ अपनी विवाहिता फूलो को बस्ती के गंदे वातावरण से मुक्ति दिलाता है। भारतीय ग्रामीण व्यवस्था के प्रति दलित चिंतकों एवं रचनाकारों ने रोष व्यक्त किया है परम्परागत ग्रामीण व्यवस्था दलितों के शोषण के प्रमुख केन्द्र थे। वहां वर्ण व्यवस्था का अत्यंत वीभत्स रूप देखने को मिलता है–बेगार प्रथा, जबरन मजदूरी, निम्न वर्ण की स्त्रियों का शोषण तथा ग्रामीण व्यवस्था की न्यायप्रणाली जातिवादी कोढ़ से ग्रस्त थी, पंच परमेश्वर जैसी तथाकथित उदात्त भावना ने सवर्णों के हितों का ही पोषण किया है। उक्त कटुपूर्ण स्थिति को देखते हुए दलित रचनाकारों की कहानियों में ग्रामीण व्यवस्था के प्रति रोष व्यक्त हुआ है साथ ही ग्रामीण पात्र शहर की ओर पलायन भी करते हैं। नैमिशराय जी की कहानियों में ग्रामीण व्यवस्था से मुक्ति का स्वर मुख्य प्रतीत होता है।

दलित विचारकों का मानना है कि अंतर्जातीय विवाह जाति व्यवस्था को नष्ट करने में पूर्ण रूप से सक्षम है। स्वयं बाबा साहेब अम्बेडकर ने लिखा है कि

"अन्तर्जातीय खान पान की व्यवस्था जाति भावना या जाति बोध को समाप्त करने में सफल नहीं हो पाई है मुझे पूरा विश्वास है कि इसका वास्तविक उपचार अंतर्जातीय विवाह ही है।"[11] परन्तु अंतर्जातीय विवाह को व्यवहारिक धरातल पर देखने का प्रयास बहुत कम विचारकों ने किया है। आधुनिक युग में भी मनुवादियों द्वारा अंतर्जातीय विवाह पद्धति की सर्वत्र आलोचना की जाती है, क्योंकि इसके द्वारा ब्राह्मणवादी, मनुवादी व्यवस्था की जड़ता टूटती है। मनु के नियमानुसार ब्राह्मण वर्ण अपने वर्ण के नीचे किसी भी वर्ण की स्त्री से विवाह कर सकता है, जबकि शूद्र पुरूष वैश्य, क्षत्रिय अथवा ब्राह्मण स्त्री से विवाह नहीं कर सकता है और यदि विवाह करता भी है तो उसके लिए सजा का प्रावधान है। यह व्यवस्था ही दलित–स्त्री की नारकीय जीवन का कारक है। उच्च वर्णों की दृष्टि में दलित–स्त्री भोग्या है। आधुनिक युग में मनु के इस नियम की सर्वत्र कटु आलोचना हुई है,लेकिन बदलाव की प्रक्रिया बहुत मंद है, क्योंकि सवर्ण मानसिकता से ग्रस्त व्यक्ति मनु विधान से मुक्त नहीं होना चाहते हैं। इसलिए दलित विमर्श एवं विमर्शकार मनु दर्शन, 'मनुस्मृति' का विरोध करता है। सामयिक परिदृश्य में अंतर्जातीय विवाह भी हुए हैं, परन्तु व्यवहारिक धरातल पर संतोषजनक परिणाम नहीं निकल सका है। सवर्ण स्त्रियों ने दलित पुरूषों से विवाह मानवता एवं बंधुत्व जैसी भावना से ओत–प्रोत होकर नहीं किया है, बल्कि उनके पद एवं प्रतिष्ठा से प्रभावित होकर किया है। दलित कहानीकार विपिन बिहारी 'तीर्थयात्रा' नामक कहानी में इस समस्या को रेखांकित करते हैं। कहानी का प्रमुख दलित पात्र एम. राम सरकारी महकमें में अभियन्ता के पद पर कार्यरत है। एक पार्टी में एम. राम का परिचय विजया शुक्ला से होता है। विजया एम. राम के पद एवं सौंदर्य पर मोहित हो जाती है, प्रारंभ में एम. राम की जाति के आधार पर विजया के माता–पिता विवाह का विरोध करते हैं, किन्तु पद व प्रतिष्ठा के समक्ष स्वार्थवश विवाह की अनुमति दे देते हैं–"अधिकारी मुफ्त में मिल रहा है स्वीकार कर लो।"[12] विवाह के पश्चात् जातिगत विद्वेष खुल कर आता है। एम. राम की स्थिति अपने ही घर में नौकरों की भांति हो जाती है। विजया उन्हें पति तुल्य सम्मान नहीं देती है, इतना ही नहीं एम. राम अपने गांव से भी कट जाते हैं,

उच्च पद पर होने पर भी घर में उनकी स्थिति दयनीय हो जाती है, मानसिक पीड़ा एवं घोर उपेक्षा सहते हुए एक दिन घर छोड़ कर चले जाते हैं। कहानी के अंत में विजया के वाक्यांश पाठक के चित्त को झाकझोर देता है–

"राम साहब नहीं हैं...? एम. राम की उम्र का कोई था।

"तीर्थ यात्रा गए हैं...। विजया के मुंह से अनायास ये शब्द निकल गए थे।

'कब ?'

"कल ही ...।"

"कहां कहां जांएगे ?"

'उनकी मर्जी ...।"[13]

विपिन बिहारी की कहानियों में अभिव्यक्त अंतर्जातीय विवाह का घातक परिणाम अंतर्जातीय विवाह पर प्रश्न चिन्ह लगाता है। कहानी संग्रह 'आधे पर अंत' के दलित पात्र अपने जातीय गौरव से युक्त हैं, वे दलित समाज के प्रति प्रतिबद्ध हैं। 'पत्थर की लकीर' कहानी की दलित नायिका सुनयना सवर्ण लड़कों के व्यंग्य वाणों को सहते हुए प्रारंभिक शिक्षा पूरी कर, शहर में उच्च शिक्षा के लिए महाविद्यालय में प्रवेश करती है। सुनयना की बौद्धिकता से प्रभावित होकर देवेन्द्र शर्मा सुनयना से मित्रता के लिए आगे आता है। वह देवेन्द्र से जातिगत मुद्दों पर खुल कर बहस करती है। वह जानती है कि "देवेन्द्र खुद को लाख बदल डाले लेकिन अपने संस्कार को कभी नहीं बदल पाएगा, कहीं न कहीं किसी न किसी रूप में उसका असर बना ही रहेगा उस पर।"[14] विपिन जी बाह्य भेदभाव की अपेक्षा सवर्णों की मानसिक संकीर्णता को प्रमुख रूप से दर्शाते हैं। सवर्णों की संकीर्ण मानसिकता ही अंतर्जातीय विवाह एवं सामाजिक समानता में बाधक है।

सुनयना को इस बात का आभास है कि सवर्ण जाति के पुरूष के साथ विवाह करने पर दलित स्त्री को पूर्णता का दर्जा नहीं प्राप्त हो सकता है। वह मात्र भोग्या ही रहेगी, देवेन्द्र शर्मा द्वारा प्रणय निवेदन करने पर सुनयना स्पष्ट शब्दों में कहती है–

"युगों से भले ही हमारी जात अवर्ण मानी जाती रही हो, लेकिन हमारे वर्ण की औरतें भोगी जाती रहीं हैं सवर्णों द्वारा। ग्रंथों में भी इसका प्रावधान किया हुआ है। मैं भी एक अवर्ण कन्या हूं और मेरा भी एक ब्राह्मण द्वारा ही भोग लगाया जाएगा। कल और आज में फर्क क्या हुआ ? कल सहमती नहीं थी आज सहमती होगी, फिर मैं इतनी पढ़ी लिखी क्यों... जब आपकी लड़कियां हमारे घर में एक सहमती के साथ आए, लेकिन ऐसा नहीं होगा तो फिर मैं.... ये सच है कि मेरी उम्र का मेरे बराबर पढ़ा–लिखा कोई कुंआरा नहीं मिलेगा मेरी जात में। मैं कम–पढ़े लिखे से ब्याह कर लूंगी लेकिन देवेन्द्र से नहीं करूंगी।"[15] स्पष्ट है विपिन बिहारी अंतर्जातीय विवाह का समर्थन इस आधार पर करते हैं कि सवर्णों की स्त्रियां भी दलित पुरूषों के साथ ब्याही जाएं और विवाह का आधार परस्पर प्रेम भाव हो न कि लोभ। जैसा कि कहानी 'तीर्थयात्रा' में दिखाया गया है। तभी समाज जातिमुक्त बन सकेगा। दलित कहानी की दिशा भविष्योन्मुखी है। सुनयना एक पक्षीय विवाह के दुष्परिणामों को जानती है। विवाह के पश्चात जीवन भर जातिगत टिप्पणियों के सहना पड़ेगा जैसा कि सूरजपाल चौहान ने अपनी कहानी 'सासू की मानसिकता' में दिखाया है। दलित बहू रंजना सवर्ण पुरूष से विवाह के पश्चात् यातनामय जीवन व्यतीत कर रही है। मनुवादी मानसिकता की शिकार सासू रंजना को रसोई घर में नहीं जाने देती है, स्वयं अपने हाथों से रोटियां बनाती है। छुआछूत उस समय चरमावस्था पर पहुंच जाता है जब रात को रंजना डायिनिंग टेबल पर परिवार के अन्य सदस्यों के साथ न बैठकर घर के एक कोने में खाने की प्लेट लिए अलग बैठती है ।

दलित रचनाकारों ने अंतर्जातीय विवाह को व्यहारिकता के धरातल पर देखने का प्रयास किया है। हिन्दी दलित कहानी में यह मौलिक कथा दृष्टि है जो थोथे सिद्धान्त का नारा न लगा कर व्यवहारिकता के पैमाने पर उनका परीक्षण करती है, सुनयना जैसी स्त्रियों के माध्यम से यह संदेश दिया गया है कि यदि वास्तव में जातिप्रथा का विनाश करना है तो सवर्णों की संकीर्ण मानसिकता में बदलाव अपरिहार्य है दलित साहित्य के विषय में कंवल भारती का कहना है कि "दलित विमर्श सिर्फ एक

जाति का विमर्श नहीं है, जैसी कि आम धारणा है कि किसी दलित समस्या को लेकर किया गया विमर्श ही दलित विमर्श है। यह धारणा गलत है। दलित विमर्श के केन्द्र में दलित समस्या को नकारा नहीं जा सकता। पर यह समस्या एक राष्ट्रीय समस्या के रूप में है। इसके केन्द्र में दलित मुक्ति का प्रश्न राष्ट्रीय मुक्ति का प्रश्न है। करोड़ों लोगों के लिए अलगाववाद का जो समाजशास्त्र और धर्मशास्त्र ब्राह्मणों ने निर्मित किया, उसने राष्ट्रीयता को खण्डित किया है और उसी कारण भारत अपनी स्वाधीनता खो बैठा था।"[16]

कंवल भारती दलित विमर्श को व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखते हैं मात्र दलित जाति का साहित्य कहकर दलित विमर्श की धार को कुंद नहीं किया जा सकता है। दलितों की समस्या राष्ट्रव्यापी समस्या है जिस पर आज तक सवर्ण विचारकों का ध्यान नहीं गया है। हिन्दी दलित साहित्य ने सवर्णों का घृणास्पद रूप दिखाया है, न केवल पुरूष कथाकार अपितु स्त्री दलित कहानीकारों ने भी दलित समाज से संबंधित समस्याओं को चित्रित किया है। दलित कथा लेखन की सशक्त हस्ताक्षर सुशीला टाकभौरे जी ने दलित कहानी में नया आयाम जोड़ते हुए हिन्दी दलित कहानी को नयी दिशा दी है। वे बाबा साहब अम्बेडकर के विचारों को गहन रूप से आत्मसात कर अपनी कहानियों के माध्यम से दलित समाज की यथास्थिति को समाप्त करने के लिए कटिबद्ध हैं। शिक्षा, संघर्ष और संगठन उनकी कहानियों की मूलभूत विशेषता है। इस दृष्टि से कहानी संग्रह 'संघर्ष' दलित चेतना की सशक्त कहानी संग्रह जान पड़ती है। 'संघर्ष', 'सिलिया', 'जन्म दिन', 'बदला', 'छोआ की माँ', 'नयी राह की खोज' आदि कहानियों में नयी पीढ़ी का विद्रोह व्यक्त हुआ है। शंकर, सिलिया, मुन्ना, कल्लू, तुलसा आदि पात्र वर्षों से चले आ रहे मैला ढोने की प्रथा का विरोध करते हैं। सुशीला जी की कहानियों के पात्र उम्र में छोटे हैं, लेकिन उनका योगदान किसी राष्ट्रीय महत्व से कम नहीं है।

सिर पर मैला ढोने की प्रथा का टाकभौरे जी ने कड़ा विरोध किया है। स्वतंत्रता, समानता एवं बंधुत्व का दंभ भरने वाले स्वतंत्र भारत वर्ष में इससे अधिक

लज्जा का विषय कोई और नहीं हो सकता, कि एक मानव दूसरे मानव का मैला अपने सिर पर ढोये। कहानी संग्रह 'संघर्ष' हिन्दू धार्मिक व्यवस्था के प्रति रोष उत्पन्न करता है कि किस प्रकार धार्मिकता एवं कर्म–फल सिद्धान्त के नाम पर दलितों के साथ अमानवीय व्यवहार किया जाता रहा है। इस प्रकार के तर्कहीन भारतीय दर्शन पर प्रहार करते हुए बाबा साहेब अम्बडेकर लिखते हैं कि "यदि आदमी का जन्म गरीब परिवार में हुआ है तो यह उसके पूर्वजन्म के बुरे कर्म का परिणाम है। यदि एक आदमी धनी घर में पैदा हुआ है तो यह उसके पूर्व जन्म के अच्छे कर्मों का परिणाम है। यदि किसी में कोई जन्मजात दोष है तो इसका कारण उसके पूर्वजन्म का बुरा कर्म है। यह एक बड़ा ही खतरनाक सिद्धान्त है। क्योंकि यदि 'कर्म' की यह व्याख्या स्वीकार कर ली जाय तो मानव प्रयास के लिए कहीं कुछ गुंजायश नहीं रह जाती। पूर्व जन्म के कर्म से ही सभी कुछ पूर्व निश्चित रहता है।"[17] टाकभौरे जी की कहानियां घृणास्पद व्यवसाय के विरूद्ध संघर्ष करती हैं। 'संघर्ष' कहानी का चौदह वर्षीय पात्र शंकर विद्यालय में पढ़ने जाता है, उसके माता–पिता पीढ़ी दर पीढ़ी उच्च वर्णों का मैला साफ करते आ रहे हैं। शंकर की नानी भी सवर्णों के घर सफाई का काम करती है और पारिश्रमिक के रूप में जूठन लेकर आती हैं। शंकर को इस काम से नफ़रत है वे अपने परिजनों से इसे छोड़ने के लिए कहता है। वह व्यथित है, स्कूल में मेधावी छात्र होने के बाद भी सवर्ण छात्रों के व्यंग्य उसकी आत्मा को पीड़ा पहुंचाते हैं। घर पहुंचते ही बालक शंकर नानी पर बरस पड़ता है–"क्यों जाती हो तुम घर घर गली मुहल्लों में काम करने ....क्यों जाती हो ? क्यों गांव की गंदगी अपने सिर पर उठाती हो ? तुमको गंदा नहीं लगता क्या ? तुम्हारी नाक सड़ गई है ? तुमको दुर्गंध क्यों नहीं आती ?"[18] शंकर बांस की झाड़ू की सीकें बिखेर देता है और अपने बाल पकड़ कर रोता है, तड़प–तड़प कर रोता है। वह गुस्से में नानी से कहता है– तुम यह काम छोड़ दो इतना ही नहीं शंकर घर में पाले हुए सुअरों को भी खदेड़ देता है। बालक की हठ के आगे नानी विवश हो जाती है और प्रण लेती है कि "मैं शंकर की सौगंध खाकर कह रही हूं ....बेटा आज से मैंने सब छोड़ दिया।"[19] 'जन्म दिन' कहानी का बाल पात्र मुन्ना भी पुश्तैनी व्यवसाय

का विरोध करता है। हाई स्कूल का विद्यार्थी मुन्ना सफाई कर्मचारियों को संगठित करता है। मुन्ना की प्रेरणा से सरकारी सफाई कर्मचारी गौरे लाल और प्रेम राठौर 'मैला न उठाने का' प्रण लेते हैं। अपने विचारों का कार्यान्वित होता देख, मुन्ना निर्णय करता है कि वह अपने बिरादरी के लोगों को बाबा साहेब के विचारों से परिचित करवाएगा। हिन्दी दलित कहानियों में शिक्षा का पर्याप्त महत्व दर्शाया गया है, रचनाकारों की दृष्टि में शिक्षा सामाजिक व्यवस्था को परिवर्तित करने का सशक्त माध्यम है। ओमप्रकाश वाल्मीकि, सूरजपाल चौहान, विपिन बिहारी आदि रचनाकारों के पात्र शिक्षा प्राप्त करने हेतु अथक परिश्रम करते हैं। शिक्षित व्यक्ति ही अपने अधिकारों के लिए संघर्ष कर सकता है, सुशीला जी की कहानियों के पात्र 'झाड़ू नहीं कलम' की बात करते हैं। 'सिलिया' कहानी की प्रमुख पात्र सिलिया परिवार से विद्रोह कर शिक्षा प्राप्त करती है उसकी दृष्टि में विवाह से ज्यादा महत्व शिक्षा का है "शादी नहीं करूंगी मुझे आगे बढ़ना है।"[20] साथ ही अपने समाज को भी आगे बढ़ाना है जिससे कि वे सम्मान पूर्वक जीवन–यापन कर सकें।

अनेक स्थल पर टाकभौरे जी गांधीवादी विचारधारा का पुनः परीक्षण भी करती हैं उन्हें गांधी प्राचीन वर्ण व्यवस्था के प्रबल समर्थक प्रतीक होते हैं। मुन्ना को लगता है कि गांधी ने अस्पृश्यों को 'हरिजन' कहकर छला है। आजादी से पूर्व दलितों से जबरन सफाई का काम कराया जाता था और आजादी के पश्चात आरक्षण के नाम पर नगर पालिका में अस्पृश्यों की भर्ती कर कानूनी रूप से मैला साफ कराया जाता है। अचानक मुन्ना को गांधी की टोपी दुर्गंधमय प्रतीत होने लगती है। स्कूल में गाया जाने वाला प्रसिद्ध गांधी भजन 'वैष्णव जन तैने कहिए .....जै पीर पराई .....जाने रे .....।' मुन्ना को बेचैन करता है। वह बार–बार सोचता है कि "क्या गांधीजी हमारी जाति की पीड़ा को जानते थे ?.... हमारे लोग आज भी झाड़ू लगाने और मल–मूत्र उठाने का काम कर रहे हैं। गांधी ने हमें क्या दिया ? हरिजन नाम देकार हमारा कौन–सा उद्धार कर दिया।"[21]

टाकभौरे जी ने सही अर्थों में राष्ट्रीय समस्याओं को उठाया है। आर्थिक विकास के चरम युग में आज भी नगरपालिका में कार्यरत कर्मचारियों में अस्पृश्यों की संख्या अधिक है। हिन्दी दलित कहानी पहली बार समाज के इस अनछुए पहलू से साक्षात्कार कराती है।

अन्य दलित कहानीकारों में सूरजपाल चौहान का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है उन्होंने बहुत कम समय में अपनी पहचान स्थापित कर दलित कहानी को नया आयाम दिया है। दलित कहानियों की चर्चा करते समय सवर्ण आलोचक दलित कहानियों/रचनाओं में पुनःरूक्ति दोष आरोपित करते हैं। सूरजपाल चौहान की कहानियां उपरोक्त आरोप का खण्डन करती हैं। उन्होंने अपने पात्रों को इस रूप में गढ़ा है कि वे निराशा, कुण्ठा, विषाद आदि उत्पन्न नहीं करते हैं। स्त्री/पुरूष दोनों ब्राह्मणवादी सत्ता के प्रति संघर्ष कर समता एवं बंधुत्व की स्थापना करने के लिए संघर्षरत हैं। विधि द्वारा स्थापित समानता की प्राप्ति के लिए दलित समाज की नयी पीढ़ी अब सीधी कार्यवाही करने के लिए विवश है। सन् 1972 में महाराष्ट्र में दलित पैंथर की स्थापना हुई। उसका व्यापक असर दलित साहित्य पर पड़ा है, हिन्दी दलित साहित्य भी उससे अछूता नहीं है। दलित पैंथर ने हिंसक उपायों द्वारा अधिकार प्राप्त करने के लिए संघर्ष किया, उत्तेजक भाषणों, हिन्दू धर्म के प्रति रोष, मनुस्मृति जलाना आदि गतिविधियों के द्वारा पैंथर ने दलितों में अधिकारों के लिए चेतना जाग्रत किया। दलित साहित्य के रचनाकरों पर उक्त कार्यवाहियों का व्यापक असर हुआ। दलित पैंथर की कार्यवाहियों से प्रभावित होकर रचनाकारों ने पैंथर के अनुरूप पात्रों का सृजन किया है। जहां तक हिंदी दलित साहित्य का प्रश्न है यहां प्रत्यक्ष न सही, अप्रत्यक्ष रूप से इसका प्रभाव देखा जा सकता है। सूरजपाल चौहान के पात्रों पर दलित पैंथर का प्रभाव अवश्य ही लक्षित होता है। उनके पात्र सवर्णों से दया की भीख नहीं मांगते हैं, बल्कि वे शोषण, उत्पीड़न के प्रति कड़ा विरोध दर्ज कराते हैं। दलित कथा संबंधी दृष्टिकोण के विषय में सुधीर सागर ने लिखा है "दलित कहानियों में ऐसे चरित्र मिलते हैं, जो कि शोषण और घृणा के साथ जी रहे हैं। सामंत वर्ग लट्ठ मार रहे हैं। चरित्र

घिघिया रहे हैं। रो रहे हैं। महिला अपनी इज्जत बचाती फिर रही हैं। यथार्थ यही है लेकिन चरित्रों की कुछ इस तरह से सृष्टि की जा सकती है कि आत्म सम्मान के साथ संघर्ष कर सके।"[22]

सुधीर सागर का मत यहां बिलकुल उचित नहीं बैठता है। उनका यह कथन गैर दलित द्वारा रचे गए साहित्य में चित्रित पात्रों के संदर्भ में सही हो सकता है, लेकिन दलित चेतना से लिखे गए साहित्य में ऐसी बात नहीं है। दलित चेतना द्वारा लिखित साहित्य का व्याहारिक रूप सूरजपाल की कहानियों में मिलता है। जिसमें दलित समाज आत्मसम्मान के साथ संघर्ष करते हुए जी रहा है। कहानी संग्रह 'हैरी कब आएगा ?' में संकलित कहानी 'परिवर्तन की बात' का दलित नायक रघु, ठाकुर हर प्रसाद की मृत गाय को उठाने से मना कर देता है, ठाकुर रघु को अलौकिकता के जाल में बांधने का प्रयास करता है। गाय को माँ तुल्य कहता है परन्तु रघु, ठाकुर की चाल समझ जाता है। ठाकुर और पुलिस प्रशासन दोनों मिल कर भी मृत गाय नहीं उठवा पातें हैं, वहीं दूसरी ओर 'छूत कर दिया' कहानी का दलित पात्र आई.ए.एस. अधिकारी बिहारी लाल रामलीला के मंच पर राम का रूप धरे हुए सवर्ण व्यक्ति द्वारा जाति सूचक अपशब्द कहने पर, अपनी पूरी ताकत से उसके मुंह पर मुक्का मार देता हैं। रामलीला के मंच पर हुई इस घटना को सारा गांव देखता है उधर सवर्ण, बिहारी लाल को मारने के लिए मोर्चा बनाते हैं और इधर गांव के दलित घोषणा करते हैं कि बिहारी को छू भर भी दिया तो पूरे गांव की 'ईंट से ईंट' बजा दी जाएगी। कुछ समय पहले तक इस प्रकार के चरित्र मराठी दलित साहित्य में ही देखने को मिलते थे। सूरजपाल की कहानियों के पात्रों के तेवर मराठी दलित कहानियों के पात्रों से कम नहीं है। सूरजपाल की कहानियों में न केवल पुरूष अपितु स्त्रियां भी अपनी अस्मिता की रक्षा हेतु हथियार उठाती हैं। 'अगूंरी' कहानी की दलित पात्र अंगूरी रूपवती है। गांव का जमींदार अंगूरी पर कुदृष्टि रखता है। गरीब होने के बाद भी अंगूरी अपनी अस्मिता नहीं बेचती। आधी रात को गांव का मुखिया चंद्रभान अंगूरी के घर की दीवार लांघ कर प्रवेश करता है तब अंगूरी पूरी ताकत से चंद्रभान का विरोध करती है। "ठहर जा

बेहया...दूसरे की बहू बेटियों पर बुरी नज़र रखने वाले निकल घर से बाहर... यदि तूने मुझे हाथ भी लगाया तो मैं तेरा खून पी जाऊंगी।"[23] चंद्रभान अंगूरी की चेतावनी को अनसुना कर उस पर झपटता है। चंद्रभान का व्यवहार अंगूरी को हिंसक बना देता है। वह चंद्रभान के पेट पर लात मार देती है और मौका मिलते ही हंसिया से उसके हाथ पर वार करती है, चंद्रभान के कपड़े खून में सन जाते हैं। वह भाग जाता है। दलित नारी का यह रूप सम्पूर्ण दलित समाज की नारी को, किसी भी प्रकार के जुर्म, शोषण का प्रबल प्रतिरोध एवं विरोध के लिए प्रेरणा देता है। इस प्रकार देखा जा सकता है कि दलितों ने दीनता, दया और याचना छोड़ कर अपने अधिकार के लिए लड़ना आरंभ कर दिया है। वह न केवल ग्रामीण जाति व्यवस्था के विरूद्ध संघर्ष करते हैं अपितु प्रशासन में व्याप्त ब्राह्मणवाद के खिलाफ भी संघर्ष करते हैं। 'साजिश' नामक कहानी कुछ इसी प्रकार के भाव को व्यक्त करती है। दलित पात्र नत्थू पुश्तैनी व्यवसाय छोड़कर ट्रांसपोर्ट का व्यवसाय आंरभ करना चाहता है। पर्याप्त पैसा न होने पर वह बैंक से लोन के लिए आवेदन करता है, परन्तु सवर्ण बैंक मैनेजर नत्थू को पिगरी लोन के लिए आवेदन करने की सलाह देता है। उसे भय है कि यदि दलित अपना पुश्तैनी व्यवसाय छोड़ कर अन्य किसी व्यवसाय में चले जाएंगे तब सवर्णों की सफाई कौन करेगा ? बैंक मैनेजर द्वारा जल्दी से जल्दी पिगरी लोन की औपचारिकता पूरी कर दी जाती है। नत्थू की पत्नी को जैसे ही मैनेजर की चालाकी का पता चलता है वह समझ जाती है कि यह हाशिए के लोगों को मुख्य धारा से काटने की साजिश है। गांव के सभी दलित युवक एकत्र होकर इस साजिश के खिलाफ बैंक के बाहर प्रदर्शन करते हैं–"मनचाहे पेशे के लिए कर्ज देना होगा पुश्तैनी धंधे में रखने की साजिश बंद करो।"[24] भीड़ देखकर बैंक मैनेजर शर्मा के हाथ पांव फूल जाते हैं। विवाद को बढ़ता देख शर्मा न केवल ट्रासपोर्ट लोन का आवेदन स्वीकार करता है, बल्कि अपना अन्य स्थान पर स्थानांतरण भी करवा लेता है। अभी तक जाति सूचक शब्दों से आहत एवं अपमानित होकर दलित ही स्थानांतरण करवाते थे अब स्थिति दूसरी है। निःसंदेह

सूरजपाल की कहानियां दलित साहित्य में नया आयाम जोड़ती है, उनका कथा कर्म दलित समाज के स्वाभिमान का वाहक है।

दलित कथा संसार में **ओमप्रकाश वाल्मीकि** अत्यंत चर्चित रचनाकार हैं। आपका व्यक्तित्व परिचय का मोहताज नहीं है। वाल्मीकि जी ने 'जूठन' (आत्मकथा) 'सलाम', 'घुसपैठिये' (कहानी संग्रह), 'दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र' एवं 'सफाई देवता' (आलोचना) आदि कृतियों के माध्यम से दलित साहित्य को सुदृढ़ आधार प्रदान किया है। बाल्यावस्था से ही विद्रोही व्यक्तित्व के धनी वाल्मीकि जी का कथा संसार दलित समाज के उत्थान हेतु समर्पित है। दलित समाज की यथास्थिति को नकारते हुए परिवर्तन की लालसा उनकी कथा का प्रमुख स्वर है। दलित समाज पर वर्षों से जबरन थोपे गए घृणित कर्म, मृत जानवर की खाल उतारना, उच्च वर्णों की सेवा करना आदि के प्रति बदलाव और शैक्षिक एवं विद्वता के उच्च संस्थान में दलित स्पेस की तलाश उनकी कहानियों की आधार शिला है।

कहानी संग्रह 'सलाम' बहुचर्चित कहानी संग्रह है। 'सलाम' की प्रथम कहानी 'सलाम' हिन्दी दलित साहित्य की सर्वश्रेष्ठ कहानी मानी जा सकती है। 'सलाम' कहानी के माध्यम से वाल्मीकि जी ने ब्राह्मणवाद की जड़ों पर प्रहार किया है। दलित समाज में प्रचलित 'सलाम प्रथा' अत्यंत घृणित प्रथा है, जिसकी चर्चा जूठन में भी की गई है। इस प्रथा के अनुसार नवविवाहित वर को वधू के परिजनों के साथ सवर्णों के घर सलाम के लिए जाना पड़ता है। सवर्ण नवविवाहित जोड़े को तिरस्कृत करते हुए उनका अपमान करते हैं। साथ ही सवर्ण अपने पुराने वस्त्र एवं अन्य घरेलू समान नवविवाहितों को उपहार स्वरूप प्रदान करते हैं। "देखने–सुनने में बहुत साधारण सी बात लग सकती है, लेकिन दूल्हा हो या दुल्हन शादी के पहले ही दिन उनमें हीनता–बोध भर दिया जाता है।..... सदियों से चली आ रही इस प्रथा के पार्श्व में जातीय अहम की पराकाष्ठा है। समाज में जो गहरी खाई है उसे प्रथा और गहरा बनाती है। एक साजिश है हीनता के भंवर में फंसा देने की। कितनी ही बार दूल्हों को ही नहीं, दुल्हनों को भी बेइंतहा अपमान सहना पड़ता है।"[25]

'सलाम' कहानी का दलित पात्र हरीश शिक्षित एवं जागरूक युवक है। उसने जाति व्यवस्था की क्रूरताओं को अत्यंत गहराई से अनुभव किया है वह पुरखों की बनाई रीति के प्रति विद्रोह करता है। हरीश के श्वसुर जुम्मन पुरानी पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करते हैं उनके मन में सवर्णों का भय है कि यदि 'सलाम प्रथा' का पालन नहीं किया गया तो सवर्णों का अत्याचार सहना पड़ेगा। बिरादरी के अन्य बड़े–बूढ़े भी अपना–अपना तर्क रखकर हरीश को समझाने का प्रयास करते हैं। "बाप दादाओं की रीति है, एक दिन में तो न छोड़ी जावे है। वे बड़े लोग हैं। सलाम पे तो जाणा ही पड़ेगा और फिर जल में रहकर मगरमच्छ से बैर रखना तो ठीक नहीं है।"[26]

उपर्युक्त उदाहरण से जान पड़ता है कि दलित सवर्णों के भय के कारण वर्षों से 'सलाम' जैसी घृणित रीति का पालन करते आ रहे हैं। हरीश के मना करते ही उच्च वर्णों के बीच बेचैनी बढ़ जाती है, जुम्मन भयभीत हो उठता है। शादी का वातावरण मातम में तब्दील हो जाता है। गांव की बदलती रीत को देखकर खुद बल्लू रांघड को जुम्मन के द्वार पर आना पड़ता हैं, परन्तु फिर भी हरीश 'सलाम' पर जाने के लिए तैयार नहीं होता है। परिवर्तन 'सलाम' का प्रमुख स्वर है। सदियों की गुलामी की एक कड़ी टूट जाती है। वाल्मीकि जी ने दलित पात्रों को विशेष दृष्टिकोण से गढ़ा है। उनके पात्र उच्च प्रतिष्ठानों में खुद के लिए स्पेस की तलाश करते हुए नज़र आते हैं। वे संघर्षरत हैं, सवर्णों के गढ़ में दलितों की यह सेंध ब्राह्मण वर्ग के लिए असहनीय है। इस ऐतिहासिक घटना ने सवर्णों को विचलित कर दिया है। शिक्षा, बौद्धिकता पर किसी एक वर्ग का आधिपत्य नहीं है। कोई भी व्यक्ति गहन अध्ययन कर बुद्धि सपन्न हो सकता है तथा रोजगार के लिए सर्वोत्तम अवसर प्राप्त कर सकता है। दलितों ने जातिगत योग्यता के मिथक को तोड़कर अपनी योग्यता सर्वत्र सिद्ध की है, परन्तु आज भी दलितों को सम्मानजनक पद पर देखना ब्राह्मणों के लिए असहनीय है। परिणामस्वरूप सवर्ण द्वारा दलितों को उच्च पद से अपदस्थ करने के लिए अनेक कुचक्रों का निर्माण किया जाता हैं। 'कुचक्र' कहानी इस प्रकार के भाव को व्यक्त करती है। कहानी का दलित पात्र आर.बी. सरकारी कार्यालय में कार्यरत है सब कुछ

पहले जैसा ही चल रह था, लेकिन जैसे ही उसके प्रमोशन की खबर ऑफिस तक पहुंचती है वातावरण कटु हो जाता है, आरक्षण से होने वाली प्रमोशन सवर्ण कर्मचारियों को उत्तेजित कर देती है। सवर्ण कर्मचारी निशिकांत और शर्मा गोलबंद होकर आर.बी. पर व्यग्ंय करते हैं साथ ही अन्य कर्मचारियों का व्यवहार भी आर.बी. के प्रति कटु हो जाता है। निशिकांत और बी.के. सक्सेना कुचक्र से आर.बी. का तबादला स्टोर में कर देते हैं और सक्सेना उसकी वार्षिक गोपनीय रिपोर्ट को भी खराब कर देता है। दलित व्यक्ति का प्रमोशन ही उसके विनाश का कारण बन जाता है निरंतर शोषण आर.बी. को व्यथित कर देती है और वह क्रोधित हो उठता है– "मैं सिर्फ इतना जानना चाहता हूं क्या एक भी ऐसा वाक्या आप बता सकते हैं जब मेरी तकनीकी योग्यता पर प्रश्न चिहन लगा हो, मेरी विश्वसनीयता के कारण सरकारी काम में बाधा पड़ी हो, अफसोस है मिस्टर वी.के. मुझे आपके जातिगत पूर्वग्रहों का शिकार होना पड़ा। आपकी रूचि काम से ज्यादा जातीय अहम की पुष्टि में है।"[27]

इसी बीच निशिकांत के साथ एक घटना घटित होती है, नजदीक के पेट्रोल पम्प पर काम करने वाले कुछ लड़के निशिकांत के घर पर हमला कर देते हैं। आर.बी. पड़ोसी होने के नाते उसे गुड़ों से बचाता है और अस्पताल में भर्ती कर देता है। इतना सब कुछ होने के बाद भी निशिकांत अपने जातीय पूर्वग्रहों से मुक्त नहीं हो पाता है और वह मारपीट का आरोप आर.बी. पर लगा देता है। पुलिस आर.बी. को गिरफ़्तार कर लेती है। आर.बी. ब्राह्मणों के कुचक्र में फंस जाता है। इस प्रकार कहानी 'कुचक्र' सवर्ण वर्गों की कुण्ठा को व्यक्त करने वाली सर्वश्रेष्ठ कहानी है।

कहानी संग्रह 'सलाम' में संकलित अन्य कहानियां 'पचीस चौका ढेड़ सौ', 'गोहत्या' एवं 'बैल की खाल' दलित चेतना को प्रभावशाली ढ़ंग से व्यक्त करती हैं। 'बैल की खाल' कहानी के प्रमुख पात्र काले और भूरे अपना परम्परागत काम छोड़कर अपने बच्चों को पढ़ाने का भाव व्यक्त करते हैं। शोषण एवं दमन को मूक भाव से सहने वाले काले और भूरे शहर जाने की आकांक्षा रखते हैं। गांव का असहनीय शोषण दलितों को शहर की ओर पलायन के लिए विवश करता है। शहर की ओर पलायन

दलित कथा की प्रमुख विशेषता रही है। ग्रामीण दलित पात्र गांव को अस्पृश्यता का प्रमुख केन्द्र मानते हैं। गांव का जमींदार एवं उच्च वर्ग जबरन दलितों से घृणित काम कराते हैं, वे बेगार प्रथा का पोषण करते हैं तथा विरोध करने पर अनेक आमनुषिक अत्याचार करते हैं। 'गोहत्या' कहानी का दलित पात्र सुक्का पिछले कई वर्षों से मुखिया का नौकर था। वह खेत खलिहान से लेकर घर बाहर के सभी काम करता है कभी किसी काम के लिए उसने मुखिया का विरोध नहीं किया, परन्तु जैसे ही सुक्का का विवाह सुन्दर स्त्री से होता है। मुखिया नैतिकता की सभी सीमाएं तोड़कर सुक्का की पत्नी को 'हवेली' आने के लिए कहता है। सुक्का मुखिया के कथन का पलट जबाव देता है कि 'वह हवेली नहीं आएगी' वर्षो से मूक दलित विरोध की भाषा बोलने लगता है। मुखिया उच्च वर्णों का अपमान होता देख सुक्का पर गोहत्या का आरोप लगा देता है। सवर्णों की पंचायत सुक्का को आरोपी घोषित करती है। गोहत्या के पश्चाताप के लिए सुक्का के हाथ पर दहकती हल का लाल फल रख दिया जाता है। आधुनिक समाज में न्याय व्यवस्था हेतु अपनाई गई इस रीति ने सुक्का का जीवन नष्ट कर दिया। पत्नी के स्त्रित्व की रक्षा करने के अपराध में सुक्का को सजा मिल जाती हैं।

ओमप्रकाश वाल्मीकि का दूसरा कहानी संग्रह 'घुसपैठिये' में संकलित कहानियां अनेक बहसों की मांग करती हैं। 'मुम्बई कांड', 'कूड़ाघर' जैसी कहानियां **मंडल आयोग** के गर्भ से उपजी हैं, तो वहीं कहानी 'घुसपैठिये' मेडिकल कॉलेजों में व्याप्त भेद–भाव की प्रवृति को व्यक्त करती है। भारत के संदर्भ में मार्क्सवाद का नारा 'मजदूरों एक हो जाओ' के खोखलेपन को उजागर करती 'प्रमोशन' कहानी मजदूरों में व्याप्त जातिगत भेदभाव की प्रवृति का बोध कराती है। कथा कहने की विविधता एवं श्रम साध्य विचारधाओं को साधारण कहानी के रूप में प्रस्तुत करने की इस अद्‌भुत कला की प्रशंसा सभी विद्वान आलोचकों ने की है, परन्तु कहानी 'शवयात्रा' में वर्णित विषय–वस्तु के माध्यम से आलोचकों ने वाल्मीकि की कथा दृष्टि पर प्रश्न चिह्न लगाया है। कहानी 'शवयात्रा' में दलित समाज की दो भिन्न जातियों के अन्तर्द्वंद्व को

दिखाया गया है कि दलितों में बल्हार जाति को समाज व्यवस्था में सबसे नीचे यानी 'अछूतों में भी अछूत' माना जाता है। बल्हार जाति का सुरजा अपने ही गांव में उच्च जाति के दलितों के अत्याचारों से शोषित एवं पीड़ित है। सुरजा का पुत्र कल्लन गाँव में मकान बनाना चाहता है, लेकिन दलितों में व्याप्त तथाकथित उच्च वर्गीय मानसिकता के लोग उसका विरोध करते हैं, इतना ही नहीं जब कल्लन की छोटी लड़की सलोनी की तबीयत बुखार से बिगड़ जाती है, शहर गांव से आठ–दस किलोमीटर दूर होने के कारण एवं यातायात के साधनों के अभाव में वह सम्पन्न दलितों से सहायता मांगता है, लेकिन वे बल्हारों को गाड़ी देने से मना कर देते हैं। अंत में कल्लन सलोनी को पैदल ही शहर ले जाने का निश्चय करता है। शहर पंहुचने से पहले ही सलोनी की मृत्यु हो जाती है। दाह संस्कार के लिए लकड़ियां न होने पर, एक बार फिर कल्लन सम्पन्न दलितों से सहायता मांगता है, लेकिन सब व्यर्थ, उच्च दलित जाति के ठेकेदार सलोनी का दाह संस्कार गांव की श्मशान भूमि पर नहीं करने देते हैं। अतः कल्लन सलोनी के शव को गांव से तीन–चार किलोमीटर दूर ले जाकर अंतिम संस्कार करता है। दलित आलोचक तेज सिंह कहानी 'शवयात्रा' के आधार पर वाल्मीकि की कथा दृष्टि की आलोचना करते हुए लिखते हैं कि "वाल्मीकि ने यह कहानी चमारों के वाल्मीकियों के असहयोग के आधार पर लिखी है, एक ही गांव में रहते हुए भी चमारों ने वाल्मीकि समाज की शवयात्रा में सहयोग नहीं दिया, बल्कि विरोध भी किया, ऐसा दिखाकर ओमप्रकाश वाल्मीकि किस दलित एकता की बात कर रहे हैं ? क्या इस कहानी से दलितों की समस्याएं और नहीं बढ़ेंगी और उनमें छुआछूत न सही पर उनकी सामाजिक एकता की लड़ाई क्या कमजोर नहीं होगी ?.....दलितों में जातिगत भेद दिखाकर ब्राह्मणवाद को ही मजबूत किया जा सकता है। यह दलित समाज का अपना अंतर्विरोध है।...यह समाज का मुख्य अंतर्विरोध नहीं है, बल्कि गौण अंतर्विरोध है।"[28] कहानी 'शवयात्रा' को लेकर अनेक दलित आलोचकों ने वाल्मीकि पर अनेक प्रश्न चिह्न लगाए हैं इन सभी प्रश्नों का उत्तर वह अपने एक साक्षात्कार में देते हुए कहते हैं कि "शवयात्रा कहानी में जो आंतरिक द्वंद्व है उसे ही रेखांकित करने की कोशिश की गई

है... मेरा मानना है कि दलित साहित्य जातिवाद का विरोध करता है वह चाहे दलितों के बीच का जातिवाद हो या गैर दलितों के बीच का जातिवाद जब आप स्वयं को दलित आंदोलन से जोड़ते हैं तो आपको इस जंजाल से मुक्त होना होगा, आप दलित भी हैं और भंगी, चमार, पासी, महार भी बने रहना चाहते हैं, यह विरोधाभास है ... 'शवयात्रा' कहानी का विरोध करने वाले अम्बेडकर के नाम पर अपनी जाति की राजनीति करना चाहते हैं जो किसी भी तरह दलित आंदोलन के हित में नहीं है।"[29]

उपरोक्त कथन से ऐसा जान पड़ता है कि वाल्मीकि का मुख्य ध्येय इस बात को लेकर है कि जाति प्रथा का अंत हो, चाहे वह दलितों में व्याप्त आन्तरिक जातिवाद ही क्यों न हो। चूंकि दलित समाज में उपजातियों के मध्य जातिवाद की प्रवृति आज भी देखी जा सकती है। सुविधा सम्पन्न एक वर्ग अन्य निम्न दलितों से पृथक होने का प्रयास कर रहा है। उसकी इस प्रवृति से निम्न दलित वर्ग को शोषण की दोहरी मार सहनी पड़ रही है इसका संकेत भगवान दास ने 'मैं भंगी हूं' में दिया है "आज मेरे लोग भी अपने ही जैसे काम करने वालों शक्ल सूरत वालों, को भी ऊंचा–नीचा समझने लगे हैं। वाल्मीकि हेला को नीच समझता है, हेला लालबेगी से नफ़रत करता है, डोमार रावत को नीच समझता है, डोम बन्सफोड़ से घृणा करता है और वाल्मीकि सभी ही को अपने से नीचा समझता है वह रोग, जो समूचे भारत को कैंसर की तरह खाये जा रहा है, उसने मुझे भी पकड़ लिया है।"[30] चूंकि दलित साहित्य के मूल में एक व्यापक विज़न है– वह जाति प्रथा को समाप्त कर समानता एवं बंधुत्व पर आधारित समाज के निर्माण का पक्षधर है। बाबा साहेब एवं गांधी के मध्य चले लगभग पच्चीस वर्षों के वैचारिक संघर्ष के मूल में वर्ण व्यवस्था ही रही थी। मधु लिमये के अनुसार गांधी "जाति के प्रचलित रूप की निंदा करते थे किन्तु वर्ण–प्रणाली की प्रशंसा करते थे....डॉ. अम्बेडकर और गांधी जी के बीच अन्त तक चले संघर्ष का यही मूल कारण था। यह संघर्ष लगभग 25 वर्ष तक चलता रहा और वर्ष–प्रतिवर्ष इसकी कटुता बढ़ती ही गई। एक या दो मौकों पर लगा कि यह संघर्ष खत्म हो जाएगा और दोनों मिलकर काम करेंगे। किन्तु दृष्टिकोणों में बुनियादी फर्क होने के कारण यह आशा निराधार ही

थी।''[31] बाबा साहेब वर्णव्यवस्था को समाप्त करना चाहते थे, जबकि गांधी जी छुआछूत समाप्त करने के लिए दृढ़ संकल्प थे, प्राचीन वर्णव्यवस्था की जड़ों पर किसी भी प्रकार का आघात उनके लिए असहनीय था। अतः अम्बेडकर के विचारों से निर्मित दलित साहित्य जाति व्यवस्था पर चोट करती है, चाहे वह दलितों के मध्य हो अथवा गैर दलितों में हो।

संदर्भ स्रोत

1. ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, 2008, दिल्ली, पृ. 108
2. वही पृ. 108
3. वही पृ. 109
4. मोहनदास नैमिशराय, आवाजें (कहानी संग्रह), समता प्रकाशन, दिल्ली, 1998, पृ.17
5. वही पृ. 18
6. वही पृ. 39
7. वही पृ. 42
8. डॉ. अम्बेडकर वाङमय, खण्ड 9, डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान, कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार, दिल्ली, 1998, पृ. 164–165
9. मोहनदास नैमिशराय, आवाजें (कहानी संग्रह), समता प्रकाशन, दिल्ली, 1998, पृ. 66
10. वही, पृ. 109
11. डॉ. अम्बेडकर वाङमय, खण्ड 1, डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान, कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार, दिल्ली, 1993, पृ. 90
12. विपिन बिहारी, आधे पर अन्त (कहानी संग्रह), मनभावन प्रकाशन, दिल्ली, 2006 पृ. 15
13. वही, पृ. 26
14. वही, पृ. 55
15. वही, पृ. 58
16. कंवल भारती, दलित विमर्श की भूमिका, इतिहास बोध प्रकाशन, दिल्ली, 2007, पृ. 17
17. डॉ. भीमराव रामजी अम्बेडकर, भगवान बुद्ध और उनका धर्म (हिन्दी अनुवादः भदन्त आनन्द कौसल्यायन), सिद्धार्थ प्रकाशन, 2001, बम्बई, पृ. 269

18. सुशीला टाकभौरे, संघर्ष (कहानी संग्रह), शरद प्रकाशन, नागपुर, 2006, पृ.13
19. वही, पृ. 20
20. वही, पृ. 48
21. वही, पृ. 24–43
22. अपेक्षा (पत्रिका), अप्रैल–जून, 2007, पृ.15
23. सूरजपाल चौहान, हैरी कब आएगा ? (कहानी संग्रह), सम्यक् प्रकाशन, दिल्ली, 2003, पृ. 46
24. वही, पृ. 42
25. ओमप्रकाश वाल्मीकि, जूठन (आत्मकथा), राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 2006, पृ. 45
26. ओमप्रकाश वाल्मीकि, सलाम (कहानी संग्रह), राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली, 2000, पृ.16
27. वही पृ. 111
28. तेज सिंह, उत्तरशती की हिन्दी कहानी, किताब घर प्रकाशन, दिल्ली, 2006, पृ.182–183
29. कथादेश (पत्रिका), मार्च, 2005, पृ. 66
30. भगवान दास, मैं भंगी हूँ, गौतम बुक सेन्टर, दिल्ली, 2007, पृ. 101
31. मधु लिमये, बाबा साहब आम्बेडकर–एक चिन्तन, आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली, 2008, पृ.31

अध्याय तीन

'घुसपैठिये' में अभिव्यक्त दलित समाज

हिन्दी दलित साहित्य में प्रयुक्त **दलित** शब्द अत्यंत व्यापक एवं व्याख्या सापेक्ष शब्द है। दलित शब्द को अनेक विचारकों ने अपने–अपने दृष्टिकोण से व्याख्यायित करने का प्रयास किया है। कुछ विचारक दलित शब्द को जाति विशेष के संदर्भ में रखना चाहते हैं तो वहीं कुछ विचारक दलित शब्द को व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखने का प्रयास करते हैं। व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखने वाले विचारकों के अनुसार सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, एवं सांस्कृतिक रूप से शोषित व्यक्ति दलित हैं, परन्तु जैसे ही हम दलित साहित्य से संबंधित अनुभूति एवं सहानुभूति जैसे शब्दों से टकराते हैं तब दलित साहित्य एवं समाज का स्वरूप और अधिक स्पष्ट हो जाता है। ओमप्रकाश वाल्मीकि दलित शब्द पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं कि "दलित शब्द का अर्थ है जिसका दमन हुआ है, उत्पीड़ित, शोषित, सताया हुआ, मसला हुआ, उपेक्षित, घृणित, रौंदा हुआ, मसला हुआ, वंचित आदि।"[1]

भारतीय धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में देखें तो उक्त परिभाषा का सीधा संबंध 'अस्पृश्य' जाति से है। भारतीय समाज के तथाकथित नियामक मनु द्वारा निर्धारित चार वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र में प्रथम तीन वर्ण धन–धान्य एवं प्रतिष्ठा से संपन्न वर्ण माने गए हैं जबकि शूद्र वर्ण का स्थान सामाजिक एवं सांस्कृतिक आदि दृष्टि से बहुत नीचे माना गया है। मनु द्वारा रचित 'मनुस्मृति' नामक ग्रंथ में शूद्र वर्ण पर अनेक सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक एवं न्यायिक प्रतिबंध लगाए गए थे। समय के परिवर्तन के साथ–साथ शूद्रों का स्थान समाज में अत्यन्त निम्न होता चला गया, निरन्तर शोषण ने उनकी चेतना को नष्ट करके ईश्वर निर्मित 'अछूत' बना दिया। स्वतंत्र भारत में उन्हें संवैधानिक शब्दावली के अनुसार नया नाम प्रदान किया गया। संविधान के अनुसार अस्पृश्य वर्ग को अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति कहा गया है। दलित आलोचक श्यौराज सिंह 'बेचैन' का मानाना

है कि "दलित वह है जिसे भारतीय संविधान में अनुसूचित जांति का दर्जा दिया गया है।"[2] कंवल भारती भी श्यौराज सिंह 'बेचैन' के मत का ही समर्थन करते हुए कहते हैं "दलित वह है जिस पर अस्पृश्यता का नियम लागू किया गया है। जिसे कठोर और गंदे कार्य करने के लिए बाध्य किया गया है। जिसे शिक्षा ग्रहण करने और स्वतन्त्र व्यवसाय करने से मना किया गया और जिस पर सछूतों ने समाजिक निर्योग्यिताओं की संहिता लागू की, वही और वही दलित है और इसके अन्तर्गत वही जातियां आती हैं, जिन्हें अनुसूचित जातियां कहा जाता है।"[3] उक्त दलित शब्द की परिभाषा के आलोक में मराठी दलित साहित्य की चर्चा न करना दलित शब्द के साथ अन्याय करना होगा। मराठी दलित साहित्य में 'दलित' शब्द पर गंभीर चिन्तन हुआ है। विविध विचारधाराओं एवं धर्म के परिप्रेक्ष्य में 'दलित' शब्द को परिभाषित व गढ़ने का प्रयास किया है। मराठी विचारकों का एक वर्ग यह मानता है कि आर्थिक सामाजिक रूप से पिछड़े हुए व्यक्तिों को भी 'दलित' में समावेश किया जाए। वास्तव में यह वर्ग शोषण के आधार पर अम्बेडकर एवं मार्क्सवाद के समन्वय का समर्थन करता है। ऐसे विचारकों में प्रमुख रूप से सदा कन्हाडे, म.न. बानखेडे एवं नामदेव ढसाल आदि प्रमुख हैं। जातिगत सीमा को तोड़ते हुए इन्होंने शोषित, श्रमिक, खेतीहर मजदूर, यायावर आदिवासियों को भी दलित के रूप में स्वीकार किया है। मराठी दलित आत्मकथाओं में एक प्रमुख आत्मकथा 'उचक्का' (लक्ष्मण गायकवाड़) है, जिसमें जरायमपेशा एवं भूमिहीन समाज के लोगों का जीवन यथार्थ रूप में चित्रित किया गया हैं। चोरी एवं धोखाधड़ी में कुशल लक्ष्मण गायकवाड़ के परिजनों के यातनामय जीवन के साथ सम्पूर्ण जरायमपेशा जातियों की व्यथा एवं समस्याओं को इस आत्मकथा में प्रमुखता से उठाया गया है। पुलिस प्रशासन द्वारा जरायमपेशा जातियों से धन वसूली तथा गरीब जनजातियों पर पुलिसिया कहर को उजागर करती इस आत्मकथा को दलित आत्मकथा ही कहा गया है, साथ ही प्रमुख मराठी दलित उपन्यास 'पथर कटवा' (लक्ष्मण गायकवाड़) की कथावस्तु के केन्द्र में महाराष्ट्र की प्रमुख मेहनतकश जनजाति 'वडार' है जिसमें

पूंजिपतियों द्वारा गरीब, अशिक्षित वडार समाज के शोषण की समस्या को प्रमुखता से उठाया गया है। कहने का तात्पर्य यह है कि मराठी दलित साहित्य में दलित शब्द व्यापक अर्थ में प्रयुक्त हुआ है जिस पर प्रकाश डालते हुए म.न. वानखेड़े लिखते हैं "दलित शब्द की परिभाषा में केवल बौद्ध अथवा पिछड़े हुए नहीं बल्कि जो भी शोषित हैं, वे सभी दलित परिभाषा में सम्मिलित हैं।"[4] वहीं नामदेव ढसाल का मानना है कि "दलित यानी कि अनुसूचित जाति, उपजाति, बौद्ध, श्रमिक, जनता, मजदूर, भूमिहीन, खेतमजदूर, यायावर और आदिवासी हैं।"[5] उक्त विचारकों के अनुसार अम्बेडकर एवं मार्क्स दोनों ही शोषित मनुष्य के अधिकारों के हिमायती हैं। अतः दोनों के समन्वय से शोषण मुक्त समाज का लक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है।

दलित समाज में विशाल संख्या उन दलितों की भी है जिन्होंने जातिगत शोषण एवं अत्याचार से मुक्ति पाने के लिए अन्य धर्मों को अपनाया है जैसे धर्मान्तरित दलित मुसलमान, धर्मान्तरित ईसाई, सिक्ख आदि अतः प्रश्न उठना स्वभाविक ही है, कि क्या इन धर्मान्तरित लोगों को दलित परिभाषा के अन्तर्गत स्वीकार किया जाए अथवा नहीं, इस समस्या का समाधान करते हुए दलित विचारक हरिराम मीणा का विचार है कि "दलित एक सामाजिक अवधारणा है जिसका दलन हुआ वह दलित, जिसे मनुष्य के दर्जे से नीचे धकेला गया वह दलित। इस परिभाषा में उक्त सब जन आते हैं और यह बनते हैं 17 प्रतिशत एस.सी., 8 प्रतिशत एस.टी., धूमन्तू 17 प्रतिशत, धर्मान्तरित मुसलमान, और पांच सात प्रतिशत धर्मान्तरित दलित ईसाई, सिक्ख वगैरह कुल मिलाकर भारत की करीब 50 प्रतिशत जनसंख्या जिसके विषय में दलित लेखकों ने कभी नहीं सोचा।"[6]

हिन्दी भाषी प्रदेशों में दलित शब्द पर अभी तक संकुचित विमर्श ही देखने को मिलता है। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि बिहार और उत्तर प्रदेश जैसे प्रमुख बड़े हिन्दी भाषी राज्यों में अनेक ऐसी पिछड़ी आदिवासी जन जातियां हैं। जिनके विषय में हिन्दी दलित साहित्य अभी तक मौन है। उपन्यास, कहानी, तथा आत्मकथा आदि जैसी सशक्त विधाओं से सम्पन्न हिन्दी दलित साहित्य में इनका कोई विशेष उल्लेख अभी

तक नहीं किया गया है। हिन्दी भाषी क्षेत्रों में रचित दलित साहित्य आत्मकथा, कहानी, उपन्यास, तथा काव्य संग्रह यथा– 'जूठन', 'अपने अपने पिंजरे', 'दोहरा अभिशाप', 'तिरस्कृत' आदि आत्मकथाओं तथा कहानी संग्रह 'घुसपैठिये', 'हैरी कब आएगा?', 'संघर्ष', 'आधे पर अंत', 'सलाम' तथा दलित उपन्यास 'तर्पण', 'छप्पर', 'करूणा', 'मिट्टी की सौगन्ध' आदि में चित्रित दलित समाज के आधार पर कहा जा सकता है कि हिन्दी दलित साहित्य में 'दलित' शब्द का अर्थ 'अस्पृश्य' वर्ण से है, जिन्हें भारतीय संविधान में अनुसूचित जाति कहा गया है। दलित वह है जो तथाकथित उच्च वर्णों द्वारा शोषित एवं उत्पीड़ित है तथा जो सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, एवं सांस्कृतिक रूप से शोषित है। मानव समाज के सभी घृणित कर्म अस्पृश्य पर ही अरोपित किए गए हैं मसलन मृत पशु को उठाना, खाल उतारना, दूसरों का मैला ढोना तथा जूठन खाना आदि। हिन्दी दलित साहित्य में दलित शब्द को इसी रूप में व्याख्यायित किया गया है । आलोचक हरिराम मीणा द्वारा उठाये गए प्रश्न के आधार पर यदि हिन्दी दलित साहित्य की रचनाओं पर दृष्टि डालें तब रचना के स्तर पर निराशा ही मिलती है। साहित्य में मुकम्मल स्थान प्राप्त करने के लिए सुदृढ़ सैद्धान्तिक पक्ष के साथ उक्त विचार की पुष्टि करने के लिए सशक्त रचनाओं का आधार होना भी आवश्यक है जो हमारे सैद्धान्तिक पक्ष की सटीक व्याख्या कर सके। चूंकि अभी हिन्दी दलित साहित्य अपने प्रतिमानों को गढ़ने की प्रक्रिया में है और मात्र बीस–पच्चसी वर्षों के छोटे से कालखण्ड को ध्यान में रखते हुए किसी भी प्रकार का निर्णय देना जल्दी–बाजी होगी। फिर भी यह कहा जा सकता है कि वर्तमान परिस्थितियां हिन्दी दलित साहित्य के अनुकूल हैं, आने वाले कुछ वर्षों में अनसुलझे प्रश्नों का समाधान अवश्य हो जाएगा।

उच्च संस्थानों में स्पेस की तलाश के लिए संघर्ष

संघर्ष और परिवर्तन भारतीय दलित साहित्य का मुख्य ध्येय है, सैंकड़ों वर्षों से पीड़ित एवं शोषित दलित समाज अपनी यथास्थिति के प्रति विद्रोह कर परिवर्तन के लिए संकल्पबद्ध है, जिसकी गूंज लगभग प्रत्येक भारतीय भाषाओं के दलित साहित्य में सुनी जा सकती है। हिंदी साहित्य भी दलित साहित्य के अखिल भारतीय स्वरूप की इस मौलिक विशेषता से बच नहीं सका है। हिंदी दलित साहित्य के सशक्त हस्ताक्षर ओमप्रकाश वाल्मीकि के कहानी संग्रह 'घुसपैठिये' में संकलित कहानियों में संघर्ष एवं परिवर्तन का स्वर प्रमुख रूप से उद्घाटित हुआ है। दलित साहित्य में अभिव्यक्त संघर्ष एवं परिवर्तन का संकल्प जातिगत शोषण के गर्भ से उपजा है।

'घुसपैठिये' में अभिव्यक्त संघर्ष सम्पूर्ण सवर्ण परम्परा की रूढ़िगत मान्यताओं के विरूद्ध है। परम्परागत रूप से भारतीय समाज का निर्माण धर्म एवं जाति के आधार पर हुआ है तथा धर्म से ही भारतीय समाज नियंत्रित एवं संचालित होता रहा है। वर्तमान परिस्थितियां भी उक्त परम्परागत दृष्टिकोण का ही पोषण करती हैं। शासन की सबसे छोटी इकाई पंचायती राज़ से लेकर संसद तक के निर्णय भी जाति व्यवस्था से प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित रहते हैं। उच्च शिक्षण संस्थान, उच्च प्रशासन और तथाकथित सवर्ण मीडिया के लोकतांत्रिक चेहरे का जातिगत चरित्र 'घुसपैठिये' में सफल रूप से चित्रित हुआ है। यद्यपि ग्रामीण स्तर पर जातिगत समस्या को अन्य दलित रचनाकारों ने यथासंभव रूप से अंकन किया है, किन्तु स्वतंत्र लोकतांत्रिक भारत के उच्च संस्थानों में दलित छात्रों एवं कार्यरत दलित अधिकारियों के साथ होने वाला घृणित व्यवहार वाल्मीकि की कहानियों में प्रमुख रूप से उभर कर आया है। शोषण एवं उत्पीड़न से ग्रस्त दलित समाज अपने अधिकार व सम्मान की रक्षा के लिए संघर्षरत है। वह अपनी अस्मिता को स्थापित करने हेतु दृढ़ संकल्प है। सैंकड़ों वर्षों से उपेक्षित, अशिक्षित दलित समाज आधुनिक युग में शिक्षा सम्पन्न हो कर सजग व्यक्ति की भांति अपने अधिकार की मांग करता है। वे शासन–प्रशासन के प्रत्येक क्षेत्र में जातिगत प्रथा

का दंश सहते हुए भी सार्वजनिक क्षेत्र में भागीदारी के लिए अथक परिश्रम कर रहे हैं। कहानी संग्रह 'घुसपैठिये' में संकलित कहानी 'घुसपैठिये' एवं 'दिनेश पाल जाटव उर्फ दिग्दर्शन' में इसी प्रकार के संघर्षशील समाज का चित्रण हुआ है। स्वतंत्रता के पश्चात् स्वतंत्र भारत में नया संविधान लागू हुआ। विधिवेताओं ने भारतीय समाज में व्याप्त अस्पृश्यता को विधिसम्मत गैरकानूनी घोषित कर समता एवं बंधुत्व की स्थापना की, साथ ही सार्वजनिक स्थलों के उपयोग में किए जा रहे भेदभाव को भी समाप्त कर दिया गया। इस प्रकार हम देखते हैं कि दलित समाज की दृष्टि से संविधान का विशेष महत्व है। संविधान सभा के प्रारूप समिति के अध्यक्ष के रूप में बाबा साहेब दलित समाज के प्रेरणा स्रोत हैं। भारतीय संविधान में दलितों पर होने वाले अत्याचारों से सुरक्षा प्रदान करने का कड़ा प्रावधान है। परन्तु आजादी के बासठ वर्ष बाद भी समता, स्वतंत्रता एवं बंधुत्व का प्रतीक भारतीय संविधान व्यवहारिक रूप से क्रियान्वित नहीं हो सका है। कहानी संग्रह 'घुसपैठिये' की कहानियां विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका की खोखली स्थिति को उजागर करती हैं। स्वतंत्रता के बाद अभी भी पूरे भारत में दलितों पर होने वाले अत्याचारों में कमी नहीं आई है। 1972 ई. में महाराष्ट्र में जन्मा दलित पैंथर वास्तव में भारतीय लोकतंत्र एवं तत्कालीन शासक की त्रुटिपूर्ण नीतियों के प्रति हुए मोहभंग का ही नतीजा था। आरक्षण जैसा संवैधानिक प्रावधान स्वतंत्र भारत में मूर्खता, अयोग्यता का पर्याय बन कर शिक्षित दलित युवक/युवतियों के अत्याचार का नया मुहावरा बन गया। भारी संख्या में अस्पृश्यों द्वारा उच्च संस्थाओं में प्रवेश, श्रेष्ठता की मनोग्रंथि से पीड़ित तथाकथित उच्च वर्णों की दृष्टि में मात्र 'घुसपैठ' के अलावा और कुछ भी नहीं है। कहानी संग्रह 'घुसपैठिये' की प्रथम कहानी 'घुसपैठिये' इसी प्रकार की समस्या को उजागर करती है, मेडिकल कॉलेज के दलित छात्र सुभाष सोनकर और सुजाता सवर्ण छात्रों के अत्याचार से पीड़ित होकर आत्महत्या कर लेते हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि ने इस कहानी के माध्यम से मेडिकल कॉलेजों में व्याप्त जातिगत भेदभाव की समस्या को प्रभावशाली ढंग से उठाया है। मेडिकल कॉलेज के दलित छात्र सुभाष सोनकर और अंतिम वर्ष की छात्रा सुजाता जातिगत विद्वेष से

पीड़ित होकर आत्महत्या कर लेते हैं। दलितों के अधिकार के लिए संघर्षरत रमेश चौधरी और राकेश जब इस संबंध में कॉलेज के डीन डॉ. भगवती उपाध्याय से बात करते हैं तब उन्हें निराशा ही मिलती है। कॉलेज में जातिगत भेदभाव इस कदर व्याप्त है कि "कॉलेज के सम्पूर्ण होस्टल को दो भागों में बांट दिया गया है, होस्टल न. एक में कमरा एलाट हो जाने के बाद भी किसी दलित छात्र को उसमें घुसने नहीं दिया जाता है। घूम–फिरकर होस्टल न. दो में ही दलित छात्रों को रखा जाता है। यही स्थिति गर्ल्स हास्टल की भी है। वहां भी सभी दलित लड़कियां एक ही होस्टल में रहती हैं।"[7] दलित छात्रों के लिए 'मैस' की भी अलग व्यवस्था की गई है। अपमान एवं तिरस्कार दलित छात्रों की दिनचर्या में अत्यंत गहराई के साथ घुलमिल गए हैं। जातिगत शोषण का विरोध करने पर तथाकथित उच्च वर्ण के छात्र दलित छात्रों की पिटाई तक कर देते हैं। डीन से शिकायत करने पर डीन भी उक्त अत्याचार को सही ठहराता है– "आरक्षण से आए हो, थोड़ा–बहुत तो सहना ही होगा।"[8] सुभाष सोनकर के मित्र विकास चौधरी और अमरदीप की भी यही स्थिति है। अमरदीप तो मात्र अपने माता–पिता की उम्मीदों को पूरा करने के लिए अत्याचार सह रहा है। कभी रैंगिग के बहाने तो कभी प्रवेश परीक्षा के प्रतिशत अंक पूछ कर दलित छात्रों को अपमानित किया जाता है। इतना ही नहीं उन्हें बंद कमरे में पीटा भी जाता है– "कल पूरा दिन होस्टल के एक कमरे में विकास चौधरी और सुभाष सोनकर को दरवाजा बंद कर के पीटा गया।"[9]

कॉलेज के बाहर, शहर से कॉलेज तक आने वाली बसों में दलित छात्रों को जाति सूचक संबोधन से अपमानित किया जाता है। केवल मेडिकल कॉलेज के छात्र ही इस प्रकार के अमानुषिक अत्याचार नहीं करते अपितु तथाकथित उच्च जाति के शिक्षक भी संकीर्ण भाव से ग्रस्त हैं। वाल्मीकि ने अपनी आत्मकथा 'जूठन' में अपने स्कूल के हेडमास्टर कालू राम के कुकृत्य का जिक्र किया है। जो शिक्षा देने के स्थान पर दलित छात्रों से स्कूल में झाड़ू लगवाया करता था। सामान्य रूप से देखें तो स्थिति जस की तस नज़र आती है। मेडिकल कॉलेज के अध्यापक प्रेक्टिकल के अंक देते समय प्रतिभा

का मूल्यांकन नहीं करते हैं, उनकी दृष्टि जाति पर ही केंद्रित रहती है। इसीलिए कक्षा में अनुपस्थित रहने तथा प्रेक्टिकल पेपर न देने पर भी त्रिवेदी सर प्रवीण मिश्रा को ही अधिक अंक देते हैं। मेडिकल कॉलेज के दलित छात्रों की आपबीती सुनकर समाज सेवी संस्था कॉलेज प्रशासन के विरूद्ध प्रतिरोध स्वरूप जुलूस निकालने की योजना बनाती हैं। जुलूस की तारीख तय हो जाती है, लेकिन इस बीच सुभाष सोनकर की आत्महत्या सामाजिक कार्यकर्ता रमेश चौधरी को अवसाद से भर देती है। रमेश चौधरी विरोध स्वरूप सोनकर का अंतिम संस्कार कॉलेज के मुख्य द्वार पर करने का निर्णय लेता है।

दलित युवक/युवतियों को अपनी योग्यता सिद्ध करने के लिए अनेक मोर्चों पर संघर्ष करना पड़ता है। पर्याप्त योग्यता होने के बाद भी निरन्तर दलित युवक/युवतियों को उपेक्षा का शिकार होना पड़ता है। 1990 के पश्चात् आरंभ हुए भूमण्डलीकरण के दौर में आरक्षण का महत्व दिन प्रतिदिन कम होता जा रहा है। सार्वजनिक क्षेत्रों का तीव्र गति से प्राइवेटाईजेशन किया जा रहा है। आरक्षण की नीतियों का निजी संस्थानों में कोई मूल्य नहीं है। विदेशी कंपनियों के तथाकथित उच्चतर व्यवसायिक पैमाना दलित समाज की शिक्षित पीढ़ी के साथ छल कर रही है। पर्याप्त योग्यता होने के बावजूद निजी कंपनियों में रोजगार करने की इच्छा रखने वाले युवकों को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। दलित युवकों का उपनाम ही उनकी योग्यता को अयोग्यता में तब्दील कर देती है। एक बार फिर से भूमण्डलीकरण के रूप में दलितों को हाशिए पर डालने की साजिश रची जा रही है। ओमप्रकाश वाल्मीकि भूमण्डलीकरण के दौर में दलित समाज की नयी पीढ़ी की समस्या को 'दिनेशपाल जाटव उर्फ दिग्दर्शन' नामक कहानी के माध्यम से व्यक्त करते हैं। कथा का तानाबाना प्राइवेट मीडिया कंपनी को आधार बना कर बुना गया है जहां पर भारतीय समाज के तथाकथित बुद्धिजीवी ब्राह्मण वर्ग का आधिपत्य है। यदि व्यवहारिक रूप से देखा जाय तो निजी मीडिया संस्थान दोहरे रूप से दलित समाज का शोषण कर रहे हैं। प्रथम, तथाकथित तथाकथित उच्च वर्णीय संपादकों की दृष्टि में दलित पत्रकार योग्यता हीन

है तथा दूसरे वे पत्रकार दलितों पर होने वाले अत्याचारों से संबंधित समाचारों को प्रकाशित न कर उन्हें रददी की टोकरी में डाल देते हैं जिससे की स्थानीय दलित उत्पीड़न की घटना राष्ट्रीय रूप न ले सके। 'दिनेशपाल जाटव उर्फ दिग्दर्शन' कहानी इसी प्रकार की घटनाओं से साक्षात्कार कराती है। रॉबिन जेफ्री लिखते हैं कि "केवल दलित ही अपनी वेदना को सशक्तता से अभिव्यक्त कर सकते हैं, ये वंचित और पीड़ित लोग हैं। उनका अनुभव दूसरे नहीं महसूस कर सकते हैं। एक अनुसूचित जाति का पत्रकार अपने समाज के बारे में ज्यादा सशक्त और विस्तार से लिख सकता है क्योंकि वह भी उसी समस्या को झेल रहा है।"[10] रॉबिन जैफ्री जैसे विदेशी शोधार्थी भारतीय समाचार पत्रों का एतिहासिक अध्ययन करने के पश्चात् इस निष्कर्ष पर पंहुचे "हालांकि 1990 के दशक में दलितों की संख्या 15 करोड़ थी लेकिन इनमें से कोई भी किसी दैनिक समाचार पत्र का संवाददाता या उपसंपादक नहीं था, न तो कोई दलित सम्पादक था और न ही कोई दलित समाचार पत्र निकालता था... भारतीय अखबारों के 10 वर्षों के अध्ययन के दौरान मैं जिन वरिष्ठ दलित पत्रकार से मिला उन्होंने किसी भी बड़े समाचार पत्र के लिए काम नहीं किया था।"[11] और यदि कोई दलित पत्रकारिता के पेशे से जुड़ा भी है तो वह अपनी जाति छिपाकर रखता है, लेकिन जाति का पता चलते ही उसके साथ 'दिनेश पाल जाटव' के समान ही व्यवहार होता है। जैफ्री अमेरिका के अश्वेतों के साथ भारतीय अस्पृश्यों की तुलना करते हुए महत्वपूर्ण तथ्य रेखांकित करते हैं। "अमेरिका में कुल जनसंख्या के 13 प्रतिशत लोग अश्वेत हैं जबकि भारत में 15 प्रतिशत दलित हैं हालांकि 1990 के दशक में अमेरिकी पत्रकारिता में अश्वेतों की उपस्थिति देखी जा सकती थी, लेकिन भारत में दलितों की भागीदारी अख़बारों से नदारद थी।"[12] इतना ही नहीं समाचार पत्रों में छपने वाले ख़बरों में से मात्र कुछ ही ख़बरें दलितों की समस्या से संबंधित होती हैं। समाचार पत्रों के मालिक, संपादक, उपसंपादक एवं पत्रकार तथाकथित उच्च वर्ण से संबंध रखते हैं। उनके लेख और समाचार उनके अपने ही वर्ण के विचारों का पोषण करते हैं।

ओमप्रकाश वाल्मीकि ने स्वतंत्र भारत के इस तथाकथित लोकतंत्र के चौथे स्तंभ की कलई खोलने का प्रयास किया है। ग्रामीण जीवन के घृणित वातावरण से बाहर निकलकर दलित अब अकादमिक एवं बौद्धिक क्षेत्र में अपना स्पेस तलाश रहे हैं। पत्रकारिता का पेशा बौद्धिकता का क्षेत्र माना जाता है। यह अधिक से अधिक जनता तक पंहुचने का सशक्त माध्यम है साथ ही दलित समाज के विकास में मीडिया अपनी महत्वपूर्ण रचनात्मक भूमिका निभा सकता है। समाचार पत्र जातिगत उत्पीड़न की घटनाओं को पर्याप्त कवरेज देकर राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय बहस की शुरूआत कर सकते हैं, किन्तु पत्रकारिता सामंतों एवं ब्राह्मणवादियों के हाथ का खिलौना बन जाने के कारण दलितों की समस्याओं को सही ढंग से रेखांकित नहीं किया जा रहा है। 'दिनेशपाल जाटव उर्फ दिग्दर्शन' कहानी का दलित पात्र दिनेशपाल जाटव एक संघर्षशील पत्रकार है। उसके द्वारा लिखे गए आलेख, फीचर, साहित्यिक टिप्पणियां, रपट तथा समसामयिक विषयों पर आलेख विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में छप चुके हैं, लेकिन इस योग्यता का कोई मूल्य नहीं है जातिवादी मानसिकता के सामने।

नियमित रोजगार के लिए उसने साप्ताहिक पत्र में उपसंपादक पद के लिए अपने सम्पूर्ण ब्यौरे के साथ आवेदन करता है, लेकिन जब काफी इंतजार के बाद भी उसे साक्षात्कार के लिए बुलावा नहीं आया तब मित्रों की सलाह पर वह संपादक से मिलने पत्र के कार्यालय गया। संपादकीय कार्यालय में दिनेशपाल जाटव का नाम सुनते ही उमेश उनियाल नामक व्यक्ति ने व्यंग्यात्मक लहजे में कहा "संपादक से मिल लो आपका ही इंतजार कर रहे हैं आप जैसे प्रतिभा संपन्न लोगों की यहां सख्त जरूरत है।"[13] जातिगत विद्वेष में डूबा हुआ व्यंग्य दिनेश पाल जाटव को व्यथित कर देता है फिर भी वह संपादक कक्ष में दाखिल होता हैं। वहां भी वही मानसिकता संपादक की बातों में झलकती है– "आपका नाम सुना है... अच्छा लिखते हैं, लिखते रहिए। हमारे साप्ताहिक में भी लिखिए... पत्रिका में फंसकर तो लेखक की मौत हो जाती है। आप यहां क्यों आना चाहते हैं ? यह जगह आप जैसे प्रतिभावान लोगों के लिए नहीं है।"[14]

जातिवाद का नया चेहरा देख कर दिनेश चकित रह जाता है। पत्र–पत्रिकाओं में प्रगतिशीलता का दंभ भरने वालों के आंतरिक चेहरे कितने सामंती है। आज दिनेशपाल को इसका प्रत्यक्ष अनुभव हो रहा है। वह अपमानित होकर संपादकीय कक्ष से बाहर निकलता है तभी ऑफिस के लोगों की आपसी बातें सुनाई पड़ती है– "सामूहिक ठहाका गूँजा... अब पत्रिकाओं में भी आरक्षण माँगने आने लगे... अब भंगी चमार भी संपादक बनेंगे...।"[15]

'जाटव' शब्द दिनेश पाल की प्रतिभा का क्षरण कर लेती है। वह अपना उपनाम बदल कर दिग्दर्शन कर लेता है। दिग्दर्शन के रूप में वह शीघ्र ही उपसंपादक के पद पर पंहुच जाता है, किन्तु दिग्दर्शन के रूप में वह जिस समाचार पत्र के जातिवादी रूप को देखता है उसका अन्तर्मन व्यथित हो जाता है। दलित समाज की समस्याओं एवं उन पर होने वाले अत्याचारों को तथाकथित उच्च वर्णीय संपादक बिना पढ़े रद्दी की टोकरी में डाल देते हैं। इसी बीच उखीमठ गढ़वाल शिवालिक पहाड़ियों में प्रकृति का तांडव होता है। भूस्खलन और पर्वत श्रृंखयलाओं के धसने से अनेक गांव नष्ट हो गए, अनेक लोग मिट्टी में दब गए। रोनलेक नामक गांव में सबसे ज्यादा तबाही हुई। इस गांव में दलितों की संख्या अधिक थी जातिगत संकीर्णता से ग्रस्त राहत कर्मचारियों ने दलितों की लाश को छूने से मना कर दिया।

"बुरी तरह लाशें सड़ रही थीं जिन्हें राहत कर्मियों ने हटाना तो दूर उन्हें छूने से भी मना कर दिया था, क्योंकि यह लाशें उस गांव में रहने वाले दलितों की थीं।"[16] दिग्दर्शन इस घटना से विचलित हो जाता है इस घटना को किसी भी अख़बार ने नहीं छापा था। अतः दलितों के साथ हुए इस अमानवीय व्यवहार को वह मुख्य पृष्ठ पर प्रकाशित करने का निर्णय लेकर हेड लाइन लिखता है 'राहत कर्मियों ने दलितों की सड़ी लाशों को छूने से इनकार किया।'

ख़बर के प्रकाशित होते ही संपादक शिवनारायण जोशी का अख़बार मलिन हो जाता है। सवर्ण संपादक प्रायश्चित स्वरूप दिग्दर्शन को नौकरी से निकाल देता है और सच कहने के अपराध की सजा दिग्दर्शन को मिल जाती है। उन ब्राह्मणवादियों के

बीच दिग्दर्शन निर्भीक व्यक्तित्व का परिचय देता है। वह निडर योद्धा की भांति अपनी नौकरी से समझौता कर फिर से 'दिनेश पाल उर्फ जाटव' बन जाता है। वह पत्रकारिता के पेशे के साथ सौदा नहीं करता और न ही अपनी अस्मिता बेचता है। नौकरी छुटते ही वह आजाद हो जाता है। "उसे लग रहा था जैसे वह पिंजरे से मुक्त कोई पक्षी है जो हवा में आकर अपने पंख फड़फड़ा सकता है। नौकरी छूट जाने के दंश को उसने एक झटके से उतार कर फेंक दिया था।"[17]

ओमप्रकाश वाल्मीकि ने इस कहानी के माध्यम से समाचार पत्र के आंतरिक चरित्र के साथ–साथ रोजगार के निजी संस्थानों के चेहरे को भी बेनकाब करने का प्रयास किया है जो आज भी जाति व्यवस्था की मानसिकता से जकड़े हुए हैं।

स्त्री शोषण के विरूद्ध संघर्ष

दलित स्त्रियों के शारीरिक शोषण की समस्या से कोई भी दलित रचनाकार अपना दामन बचा कर नहीं निकल पाया है। हिन्दी और मराठी ही नहीं पंजाबी, गुजराती आदि भारतीय भाषाओं में लिखित दलित साहित्य में दलित स्त्रियों की समस्या को प्रमुखता से चित्रित किया गया है। दलित स्त्री शोषण का सर्वाधिक घृणित रूप भारतीय गांवों में देखने को मिलता है जहां सामंती एवं ब्राह्मणवादी प्रवृतियों के पोषक तथाकथित उच्च वर्णों एवं अन्य जातिवादी लोगों द्वारा दलित स्त्रियों की अस्मिता को कुचला जाता रहा है। पारिवारिक अस्मिता की प्रतीक स्त्री के अस्तित्व को नष्ट करके तथाकथित उच्च वर्णीय लोगों ने दलित समाज को मानसिक रूप से गुलाम बना कर न केवल दलितों का शोषण किया है अपितु उनके आत्मसम्मान पर भी गहरी चोट की है। हिंदू धर्म जैसा 'अलौकिक' धर्म ने उनके इस कार्य में पर्याप्त सहयोग दिया है। जिसका खुलासा करते हुए बाबा साहेब लिखते हैं–"मनु ने ब्राह्मण को दान प्राप्त करने का अधिकार दिया है। यह हमेशा धन या चल सम्पति के रूप में होता था। लेकिन कुछ समय बाद दान की अवधारणा का विस्तार किया गया, जिससे स्त्री दान भी शामिल किया जा सके और जिसे ब्राह्मण अपनी स्त्री के रूप में रख सके। या जिसे ब्राह्मण

धन लेकर वापस कर सके। मनु ने ब्राह्मण को भूदेव अर्थात् पृथ्वी के देवता की संज्ञा दी है। ब्राह्मणों ने इस कथन को व्यापक बनाया और वे अन्य वर्गों की स्त्रियों के साथ संभोग करना अपना अधिकर समझने लगे।"[18] मनु के इस नियम से दलित समाज पर अनेक दूरगामी प्रभाव पड़े।

आज दलित लेखन के आक्रामक तेवर ने स्त्री शोषण एवं वर्ण व्यवस्था के विरूद्ध एक जुट होकर संघर्ष का मार्ग प्रशस्त किया है। इस एक जुटता का ही परिणाम है जिसने दलित कथा साहित्य को एक नया आयाम दिया। परिवर्तन की इस लहर का चित्रण दलित महिला कथाकारों ने भी व्यापक स्तर पर किया है जिनमें कुसुम मेघवाल एवं रजत रानी 'मीनू', अनिता भारती, आदि प्रमुख हैं। इन लेखिकाओं के स्त्री पात्र इतनी सशक्त हैं कि वह अपने ऊपर हुए अत्याचारों के विरोध में पुलिस प्रशासन की राह न देखकर स्वयं 'दरांती' से न्याय करती हैं। कुसुम मेघवाल की कहानी 'अंगारा' की नायिका जमना, ठाकुर के लड़के के कुकृत्य की सजा स्वयं दराती से देती है।

भारतीय समाज में दलित स्त्रियों का व्यक्तित्व एवं कार्यक्षेत्र गैर दलित स्त्रियों के व्यक्तित्व एवं कार्यक्षेत्र से सर्वथा पृथक रहा है। विरोध की सशक्त परम्परा दलित स्त्रियों की मौलिक विशेषता रही है। वे आरंभ से ही पुरूष सत्ता के वर्चस्व का विरोध करती रही हैं। कहानी संग्रह 'घुसपैठिये' की दलित युवतियां बिरमा और कमली जैसे पात्रों का जन्म अचानक ही नहीं होता, बल्कि उनके व्यक्तित्व में व्याप्त प्रतिरोध की वह सशक्त परम्परा ही हैं जो उन्हें संघर्ष के लिए प्रेरित करती हैं। कहानी 'यह अंत नहीं' की नायिका बिरमा तथा 'जंगल की रानी' की नायिका कमला को एक साथ अनेक धरातल पर संघर्ष करना पड़ता है। इनका संघर्ष दलित पुरूषों की तुलना में अधिक कष्टमय है। बिरमा के कार्य क्षेत्र का विस्तार घर से लेकर ठाकुरों के खेत खलिहान तक है। वह गर्मी के उमस भरे दिनों में गांव के ठाकुर तेजभान के खेत में धान की कटाई करने जाती है। एक दिन खेत से लौटते समय ठाकुर का लड़का सचीन्दर दिखाई पड़ता है। बिरमा उसे देखते ही भावी आशंका भाप लेती है वह तेजी से जाने

की कोशिश करती है, लेकिन सचीन्दर आगे बढ़कर उसका रास्ता रोक लेता है और अवसर मिलते ही बिरमा के साथ छेड़खानी करने लगता है। सचीन्दर का दुर्व्यवहार देखकर बिरमा क्रोधित हो जाती है। वह पूरी ताकत से सचीन्दर के जांघों के बीच प्रहार करती है– "लात का प्रहार इतना तगड़ा था कि सचीन्दर उठ नहीं पाया किसी तरह लड़खड़ा कर खेत में घुसकर गुम हो गया।"[19]

इस प्रकार बिरमा अपनी अस्मिता की रक्षा करती है। इस घटना से सारे में गांव सन्नाटा पसर जाता है। गांव के बड़े–बूढ़े उक्त घटना पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कहते हैं– "कोई नई बात न है गरीब की इज्जत का कोई मोल मतलब ही न होवे है। ये सब तो होता ही रहा है।"[20] बिरमा के पिता मंगलू घटना को दबाने का प्रयास करते हैं "ना किसन जबान खोलेंगे तो बुरा हो जगा। इबी तो बात घर में है कल पूरे गाँव देहात में फैलेगी... बदनामी होगी। बिरमा के माथे पर दाग लग जागा... चुप रहना ही ठीक है....।"[21]

मंगलू का बड़ा लड़का किसन शहर के कॉलेज में पढ़ता है। वह सचीन्दर को उसके कुकर्मों की सजा दिलाने के लिए अपने मित्रों के साथ मिल कर थाने में रपट लिखाने जाता है। किसन के मित्र प्रवीण को न्याय व्यवस्था पर यकीन है, लेकिन थानेदार का पक्षपात पूर्ण रवैया ठाकुर के व्यवहार से भी अधिक कठोर सिद्ध होता है। इंस्पेक्टर ने कटाक्ष करते हुए कहा "छेड़खानी हुई है... बलात्कार तो नहीं हुआ.. तुम लोग बात का बतंगड़ बना रहे हो। गांव में राजनीति फैलाकर शान्ति भंग करना चाहते हो। मैं अपने इलाके में गुंडागर्दी नहीं होने दूँगा... चलते बनो।" कुछ क्षण उनके बाहर निकलने का इंतजार किया। वे टस से मस नहीं हुए तो अजीब सी मुद्रा बना कर बोला, "फूल खिलेगा तो भौंरे मँडराएंगे ही...।"[22]

इंस्पेक्टर का व्यवहार किसन को उत्तेजित कर देता है उसके विरोध करने से पहले ही इंस्पेक्टर सभी लोगों की पिटाई शुरू कर देता है। न्याय व्यवस्था से निराश होकर किसन ग्राम पंचायत की शरण में जाता है, उसे विश्वास है कि दलित प्रधान बिसन सिंह चौधरी उसकी सहायता अवश्य करेगा। किसन की अर्जी स्वीकार करते ही

प्रधान बिसन सिंह भय से कांप उठता है यद्यपि प्रधान का पद दलित वर्ग के लिए आरक्षित है, परन्तु व्यवहारिक रूप से उस पर तेजभान का ही अधिपत्य है। "अर्जी देखते ही जैसे भूचाल आ गया था बिसन सिंह प्रधान पसीने–पसीने हो गया था। तेजभान के खिलाफ कोई कदम उठाने लायक ताकत उसमें नहीं थी।"[23] पंचायत मामले को ज्यादा तूल ने देकर सचीन्दर पर मात्र पांच रूपये का जुर्माना लगाती है, पंच का फैसला सुनकर किसन के मित्रों के चेहरे उतर जाते हैं। यह एक ऐतिहासिक कदम था। पहली बार किसी दलित स्त्री के साथ छेड़छाड़ की घटना पर हुए इस मत्स्यन्याय से दलितों के अन्दर स्वाभिमान जाग्रत होता है।

नयी पीढ़ी का आत्मविश्वास बढ़ जाता है। अब वह स्त्री शोषण के विरूद्ध एकजुट हो जाते हैं और अपने भाईयों का संघर्ष देखकर बिरमा का भी हौसला बढ़ जाता है। एक अन्य कहानी 'जंगल की रानी' की दलित आदिवासी युवती कमली अपनी अस्मिता की रक्षा करते हुए अपने प्राण न्यौछावर कर देती है। पढ़ने में आगे रहने वाली कमली की प्रतिभा से प्रभावित होकर स्कूल के हेडमास्टर स्कूल में ही कमली के लिए रोजगार की व्यवस्था कर देते हैं। नियमानुसार डिप्टी साहब स्कूल का मुआयना करते हैं, तभी उनकी कुदृष्टि कमला पर पड़ती है। कमली के यौवन को देखकर डिप्टी साहब के 'भीतर का बहशी तेंदुआ घात लगाकर बैठ जाता है'। जंगल के फूल की खातिर डिप्टी साहब 'ग्रामीण महिला प्रशिक्षण शिविर' का आयोजन करने का षड़यन्त्र रचते हैं। इलाके के उभरते नेता विधायक उसके इस षड़यन्त्र में सहयोग करता हैं। गांव से कमली को डिप्टी साहब के बंगले पर लाया जाता है, कमली के आते ही डिप्टी साहब उसके ऊपर झपट पड़ते हैं। अचानक हमले से कमली घबरा जाती है। वह अपनी अस्मिता की रक्षा के लिए डिप्टी साहब को घक्का देकर भागने का प्रयास करती है, परन्तु तीन तेंदुओं के बीच से निकलना उसके लिए संभव नहीं था, फिर भी वह हर संभव प्रयास करती है। "कमली के भीतर जंगल जाग उठा था। वह जंगली जानवरों की मांद में फंस गयी थी। उनसे बचने के लिए संघर्ष करने लगी। शरीर के कपड़े चीथड़ों में बदल गए थे। चीथड़े घावों और खरौंचों को ढक पाने में

असफल होने लगे थे। संघर्ष चरम सीमा पर था डिप्टी साहब हांफने लगे थे। कमली ने विधायक जी को पटखनी देकर फर्श पर गिरा लिया था, छाती पर चढ़ कर पंजों से विधायक जी की गर्दन दबोच ली थी। विधायक जी की आंखें साक्षात मृत्यु का दर्शन कर रही थी।"[24]

असहाय युवती कमली अपने अदम्य साहस से तीनों शिकारियों को पस्त कर देती है। अचानक एस.पी. साहब कमली की 'गर्दन पर अपने बाहों का घेरा डाल देते हैं और कमली की गर्दन ढीली हो जाती है'। वाल्मीकि जी ने इस कहानी के माध्यम से उच्च संवैधानिक पदों पर बैठे सफेदपोश पदाधिकारियों को बेनकाब किया है जो धन एवं पद का दुरूपयोग कर दलित आदिवासी महिलाओं का शोषण करते हैं, साथ ही कमली अपने जुझारू व्यक्तित्व के कारण प्रेरणा की स्रोत बन जाती है। वह दलित स्त्रियों के प्रति प्रचलित मुहावरे को ध्वस्त कर नया मुहावरा गढ़ती है।

धार्मिक एवं संस्कृति चेतना

कहानी संग्रह 'घुसपैठिये' में दलित समाज की संस्कृति, रीति–रिवाज एवं धार्मिक मान्यताओं आदि का प्रभावशाली ढंग से चित्रण हुआ है। संस्कृति का निर्माण जिन तन्तुओं से मिलकर होता है– उसमें परिवार, धार्मिक मान्यताएं, आचार–विचार आदि का महत्वपूर्ण स्थान होता है। दलित समाज की सांस्कृतिक विशेषता सवर्ण हिन्दुओं की सांस्कृतिक विशेषता से न केवल पृथक है अपितु वे उनकी संकीर्ण सीमाओं का भी अतिक्रमण करती हैं। भारतीय सवर्ण इतिहासकारों ने दलित समाज की गौरवशाली सांस्कृतिक परम्परा को सदैव नकारने का प्रयास किया है। 'अनेकता में एकता' की अवधारणा उस समय औचित्यहीन हो जाती है जब हिन्दू संस्कृति को ही भारतीय संस्कृति का पर्याय मान लिया जाता है। हिन्दू संस्कृति रूपी वृक्ष के जबरन फैलाव से भारतीय समाज की अन्य संस्कृतियां अकारण ही दम तोड़ देती हैं, संभवत यही कारण है कि चार्वाक दर्शन और बौद्ध धर्म को जानने और समझने के लिए हमें चीन, वर्मा और म्यांमार आदि देशों का रूख़ करना पड़ता है। सांस्कृतिक विनाश किसी

भी प्रजाति को मानसिक रूप से गुलाम बनाने का सबसे सरल उपाय है। अतीत के गौरव को नष्ट करके वर्तमान एवं भविष्य की आकांक्षाओं पर सहज ही कुठाराघात किया जा सकता है। दलित समाज की यही स्थिति भारतवर्ष में है। अनेक दलित विचारकों का मत है कि दलित हिन्दू न होकर उनसे पृथक है। दलितों की संस्कृति, रीति–रिवाज, धार्मिक मान्यताएं उन्हें हिन्दुओं से पृथक करती है। ब्रिटिश शासन काल में सन् 1910 में हुए जनगणना के नियमानुसार तत्कालीन जनगणना आयुक्त ने दलित समाज को अन्य समुदाय से अलगाने के लिए उनकी निम्न विशेषताएं चिन्हित की थी–

1. "ब्राह्मणों का प्रभुत्व नहीं मानते ।
2. किसी ब्राह्मण अथवा अन्य किसी माने हुए हिंदू गुरू से मंत्र नहीं लेते।
3. वेदों को प्रमाण नहीं मानते।
4. हिंदू देवी देवताओं को नहीं पूजते।
5. अच्छे ब्राह्मण उनका संस्कार नहीं करते।
6. उसका कोई ब्राह्मण पुरोहित नहीं होता।
7. हिंदू मंदिरों के गर्भ में नहीं जा सकते।
8. स्पर्श अथवा एक निश्चित सीमा के भीतर आकर उसे अपवित्र कर देते हैं।
9. अपने मुर्दों को गाढ़ते हैं।
10. गौमांस खाते हैं और गौ के प्रति श्रद्धा नहीं रखते।" [25]

ब्रिटिश सरकार ने दलितों को शतप्रतिशत हिंदू नहीं माना, लेकिन कुछ तथाकथित राष्ट्रवादियों द्वारा दलितों को हिंदू पट्टी में समेटने का प्रयास किया जिसका एक मात्र लक्ष्य था मुसलमानों के अनुपात की तुलना में हिंदुओं की संख्या में वृद्धि करना। यद्यपि यह विषय गंभीर विमर्श की मांग करता है, परन्तु यहां दलितों एवं सवर्ण हिन्दुओं की संस्कृति में व्याप्त भिन्नता दिखाना ही हमारा ध्येय है।

तेलगु के प्रसिद्ध दलित विचारक कांचा इलैया भी बार–बार इस प्रश्न से जूझते हैं। इस विषय में उनकी प्रसिद्ध रचना 'मैं हिन्दू क्यों नहीं हूँ' गंभीर चिन्तन का सशक्त उदाहरण है । "1990 के दशक में आंरभ हुआ हिन्दुत्ववाद नामक शब्द हमारे कानों में

अचानक इस तरह बजने लगा मानो कोई भी मुसलमान, ईसाई या सिक्ख नहीं है वह हिन्दू है। मुझे इस बात ने बुरी तरह चकरा दिया।"[26] कांचा इलैया की यह चकंराहट ही दलित संस्कृति की पुनःजांच पड़ताल करने की प्रेरणा देती है। पुस्तक के सात अध्यायों में वह दलित समाज की विविध सांस्कृतिक विशेषताओं की सटीक व्याख्या करके यह स्थापित करते हैं कि दलितों का पारिवारिक गठन, चेतना स्रोत, देवी–देवता, विवाह–पद्धति एवं रहन–सहन न केवल हिन्दुओं से पृथक है, बल्कि वह अधिक मानवीय है इसलिए वह सम्पूर्ण भारतीय समाज के दलितीकरण की जरूरत महसूस करते हैं।

दलित समाज के सांस्कृतिक स्रोत के रूप में चार्वाक, महात्मा बुद्ध एवं मध्यकालीन संत कबीर, पीपा और रैदास आदि के क्रान्तिकारी विचारों को स्वीकार किया जा सकता है इन संतों ने दलित समाज को वैचारिक रूप से आंदोलित किया है। चार्वाक एवं महात्मा बुद्ध संभवतः पहले क्रान्तिकारी व्यक्ति थे जिन्होंने रूढ़िग्रस्त ब्राह्मणवादी वर्चस्व को चुनौती दी थी, बौद्ध धर्म अपनी मौलिक विशेषताओं के कारण न केवल भारत में, बल्कि चीन, जापान, वर्मा तथा लंका आदि द्वीप समूहों में भी आकर्षण का केन्द्र बना। बौद्ध धर्म का सटीक मूल्यांकन करते हुए प्रसिद्ध इतिहासकार उमा चक्रवर्ती लिखती हैं–"बुद्ध ने अपने समय के तेजी से बदलते समाज का विश्लेषण करने तथा मनुष्य जाति के लिए एक स्थाई समाज दर्शन प्रदान करने का अत्यंत गहन और व्यापक प्रयास किया था। बौद्ध धर्म ने एक वैकल्पिक समाज का भी खाका खड़ा कर दिया था उसने उस समय जड़ जमातीं श्रेणीबद्ध असमानतावादी विचारधारा और व्यवहारों से भिन्न सिद्धान्तों पर आधारित समाज को संगठित करने की संभावना खड़ी कर दी थी।"[27]

वैकल्पिक समाज के अलावा बौद्ध दर्शन की सबसे बड़ी उपलब्धि यह थी कि ब्राह्मण धर्म की आलौकिकता, पुनर्जन्म, कर्मफल एवं पशुबलि आदि कुप्रथाओं के विपरीत बौद्ध धर्म ने लौकिक धर्म की स्थापना की। बौद्ध धर्म समानता एवं बंधुत्व जैसे उदात्त भावों पर आधारित होने के कारण सहज ही लोकप्रिय हो गया। बाबा साहेब अम्बेडकर

ने स्वयं बौद्ध धर्म में दीक्षित होने से पहले ईसाई एवं इस्लाम आदि धर्मों का भी तुलनात्मक अध्ययन किया था और वह इस निष्कर्ष पर पहुंचे थे–"ईसा ने ईसाइयत का पैगम्बर होने का दावा किया। इससे आगे उसने यह भी दावा किया कि वह खुदा का बेटा है... जब तक कोई आदमी यह न स्वीकर करे कि ईसा खुदा का बेटा है तब तक उसकी मुक्ति हो ही नहीं सकती... इस्लाम में पैगम्बर मुहम्मद साहब का दावा था कि वह खुदा द्वारा भेजे गए इस्लाम के पैगम्बर थे... जो इस्लाम में रहकर मुक्ति लाभ करना चाहता हो, उसे यह स्वीकर करना होगा कि मुहम्मद साहब खुदा के पैगम्बर हैं... भगवान बुद्ध ने कभी कोई ऐसी शर्त नहीं रखी। उन्होंने शुद्धोधन और महामाया का प्राकृतिक पुत्र होने के अतिरिक्त कभी कोई दूसरा दावा नहीं किया। उन्होंने ईसा मसीह या मुहम्मद साहब की तरह की शर्तें लगाकर अपने धर्म शासन में अपने लिए कोई खास स्थान सुरक्षित नहीं रखा।"[28]

अन्य धर्मों की तुलना में बाबा साहब को बौद्ध धर्म अधिक लौकिक प्रतीक हुआ। उन्होंने स्वयं हिन्दुओं की अलौकिकता एवं तथाकथित ईश्वर विधान के अत्याचारों को झेला था। अतः बौद्ध धर्म की मानवता की भावना से प्रभावित होकर बाबा साहेब ने बौद्ध धर्म स्वीकार किया। बाबा साहब के इस एतिहासिक निर्णय के पश्चात् बौद्ध धर्म दलितों के लिए एक विकल्प के रूप में सामने आया। अतः कहा जा सकता है कि दलित समाज स्वयं को बौद्ध धर्म के अधिक करीब महसूस करता है इतना ही नहीं संत चोखामेला, कबीर, रैदास आदि के विचार दलित साहित्य की आधार भूमि के रूप में कार्य करते हैं। दलित साहित्य में भगवान बुद्ध के मूल्यों का सृजनात्मक रूप से चित्रण हुआ है।

'घुसपैठिये' में अभिव्यक्त दलित समाज की सांस्कृतिक विशेषताओं पर बौद्ध दर्शन का महत्वपूर्ण प्रभाव लक्षित होता है। सामान्यतः दलित साहित्य को जातिवादी साहित्य कहकर आलोचना की जाती है तथा दलित साहित्य से संबंधित नकार और विद्रोह जैसी प्रवृतियों की गलत व्याख्या हिंसक प्रवृति के रूप में की जाती है। यद्यपि यह ठीक है कि दलित साहित्य का जन्म वेदना एवं तिरस्कार से हुआ है, लेकिन

दलित साहित्य हिंसक प्रवृतियों का पोषण नहीं करता है। वह मानवीयता के उदात्त भावों से युक्त है जिसका व्यवहारिक रूप हमें ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानियों में मिलता है। 'मुम्बई कांड' नामक कहानी मानवीयता के आधार पर ही स्वस्थ्य समाज के निर्माण पर बल देती है साथ ही 'घुसपैठिये', 'यह अंत नहीं', 'शवयात्रा', 'हत्यारे' एवं 'दिनेशपाल जाटव उर्फ दिग्दर्शन' नामक कहानियों के पात्र जतिगत भेद भाव समाप्त करने के लिए संघर्षरत हैं, परन्तु वे पात्र कभी हिंसा को अंतिम उपाय के रूप में नहीं अपनाते हैं।

कहानी 'मुम्बई कांड' का दलित पात्र सुमेर सरकारी दफ्तर में कार्यरत है। समसामयिक विषयों का अच्छा जानकार होने के साथ–साथ वह एक जागरूक दलित समाज के नवयुवक का भी प्रतिनिधित्व करता है। बहुचर्चित मुम्बई कांड जिसमें दलितों को निशाना बनया गया था, सैकड़ों अम्बेडकर समर्थकों पर गोली चलाकर सवर्णों ने हिन्दू धर्म की हिंसात्मक प्रवृति का परिचय दिया था। साथ ही अम्बेडकर की मूर्ति को भी अपमानित किया गया था। सुमेर को यह घटनाएं विचलित कर देती हैं। वह प्रतिशोध की भावना से वशीभूत हो जाता है। अम्बेडकर की मूर्ति का अपमान दलितों की अस्मिता पर चोट करने के समान है, सुमेर रात भर ठीक से सो नहीं पाता, वह विरोध करने का निर्णय करता है, परन्तु विरोध किस रूप में करे, इस बात को लेकर वह दुविधा में है। धरना प्रदर्शन से लेकर आत्मदाह तक करने का विचार उसके मन को आंदोलित करते हैं। अंत में नगर में लगी किसी मूर्ति को जूतों की माला पहना कर अपमानित करने का निर्णय लेता है। मूर्ति चयन भी काफी थका देने वाला काम था, लेकिन अंत में वह गांधी पार्क स्थित गांधी की मूर्ति को अपमानित करने का निश्चय करता है। योजना अनुसार वह रात के लगभग ग्यारह बजे रेलिंग पार कर गांधी पार्क में प्रवेश करता है, मूर्ति के पास पहुंचते ही उसके मानवीय भाव जाग्रत हो जाते हैं और वह सोचने लगता है। "अरे! मैं यह क्या कर रहा हूँ। मुम्बई में किसी ने मेरे विश्वास पर चोट की और मैं यहां किसी की आस्था पर चोट करने जा रहा हूँ। कुछ 'गांधी' को बापू कहते हैं और कुछ अम्बेडकर को 'बाबा' वहां बाबा कहने वाले मरे गए, यहां

बापू कहने वाले मारे जा सकते हैं। बाबा कहने वालों पर भी गाज गिर सकती है। जो भी हो मारे तो निर्दोष ही जांएगे... नहीं... यह रास्ता न बुद्ध का है और न ही अम्बेडकर का।... नहीं मैं एक गुनाह का बदला दूसरे गुनाह से नहीं लूगां।"[29]

महात्मा बुद्ध का अहिंसा दर्शन, आत्मालोचन ने सुमेर के अन्तःमन में जल रही प्रतिशोध की अग्नि को शांत कर दिया, अपमान और प्रतिशोध जैसी प्रवृतियों पर वह विजय प्राप्त कर लेता है।

दलित सहित्य में महात्मा बुद्ध के जीवन दर्शन का सर्वाधिक प्रभाव है। महात्मा बुद्ध द्वारा निर्मित वैकल्पिक समाज का खाका दलितों के लिए अत्याचार से मुक्ति का एक मात्र रास्ता बनता है। कहानी 'कूड़ाघर' का प्रमुख दलित पात्र अजब सिंह महात्मा बुद्ध के विचारों के प्रति आस्था रखता है। जेब में लगे पैन पर भगवान बुद्ध की मूर्ति उसे निरन्तर प्रेरणा देती रहती है। दलित पात्र हिन्दू देवी देवता के पारलौकिक रूप में विश्वास नहीं रखते हैं, वे भौतिक जगत को ही यथार्थ मान कर करूणा एवं मैत्री जैसे विचारों की स्थापना करते हैं। 'घुसपैठिये', 'यह अन्त नहीं', 'दिनेशपाल जाटव उर्फ दिग्दर्शन' आदि कहानियों के प्रमुख पात्र अपनी समस्याओं के प्रति सजग है। उसके समाधान के लिए वे अलौकिक सत्ता पर आश्रित नहीं हैं।

घुसपैठिये में अभिव्यक्त दलित समाज के **पारिवारिक ढांचे** पर विचार करने पर यह स्पष्ट रूप से लक्षित होता है कि दलितों का पारिवारिक ढांचा गैर दलित के पारिवारिक ढांचे से न केवल अलग है बल्कि उसका स्वरूप कुछ–कुछ मातृसत्तात्मक एवं पितृसत्तात्मक दोनों का समन्वय प्रतीत होता है। परम्परागत हिन्दू परिवार पितृ प्रधान होता है और स्त्रियों की स्वाधीनता पुरूष सदस्यों के आधीन रहती है। घर की चारदीवारी में कैद सवर्ण स्त्री हिन्दू धर्म जनित अनेक यातनाओं को भोगती है उसके आचार विचार पर मनुस्मृति के नियमों का घेरा रहता है। धार्मिक कर्मकांडों का पर्याप्त महत्व होने के बाद भी वह पुरोहिताई जैसे कर्म नहीं कर सकती है। इसके विपरीत दलित स्त्रियों का व्यक्तित्व सर्वथा स्वतंत्र रहता है वे सुकुमारी एवं कोमल न होकर मेहनत करने वाली जुझारू महिला के रूप में हमारे सामने आती है। घर के कार्यों के

साथ–साथ बाहर के सभी कार्यों का सफलता पूर्वक निर्वाह करती है। शोषण व अत्याचार को मूक भाव से सहने के स्थान पर वह कड़े विरोधी तेवर अपनाती है। 'रिहाई', 'जंगल की रानी', 'यह अन्त नहीं' कहानी के स्त्री पात्र सुगनी, कमली और बिरमा दलित समाज की सशक्त स्त्री पात्र का प्रतिनिधित्व करती हैं। सुगनी दिसम्बर महीने की हड्डी कंपा देने वाली सर्दी में रात ग्यारह बजे अनाज की बौरिया गोदाम में रखवाती है। पति मिट्ठन के बीमार होने पर उसके हिस्से की मजदूरी करती है। गोदाम के मालिक लाला के अत्याचारों की परवाह न करते हुए वह अपने पति का पक्ष लेती है। 'जंगल की रानी' की कमला अपनी अस्मिता की रक्षा करते हुए इलाके के एस.पी., विधायक और डिप्टी साहब तीनों से मुकाबला करती है। बिरमा का संघर्ष और श्रम दलित महिलाओं को प्रेरणा देता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि 'घुसपैठिये' में चित्रित दलित परिवार की स्त्रियां परिश्रमी एवं स्वाभिमानी हैं जो दूसरों पर निर्भर न रह कर अपनी आजीविका का प्रंबध स्वयं करती हैं।

धार्मिक कुरीतियां एवं अन्तर्विरोध

अशिक्षा एवं अज्ञानता ने दलित समाज में अनेक कुरीतियों को जन्म दिया है। हिन्दू धर्म में व्याप्त धार्मिक रूढ़ियां, अंध–विश्वास, जादू, तन्त्र–मंत्र, तथा दैवी प्रकोप जैसी अवैज्ञानिक प्रवृतियों ने दलितों की सामाजिक एवं आर्थिक शक्तियों का काफी दोहन किया है। दलित साहित्यकार माता प्रसाद गुप्त ने अपनी आत्मकथा 'झोपड़ी से राजभवन' में दलित समाज में प्रचलित कुरीतियों की चर्चा करते हुए लिखते हैं–"कोई बीमारी होने पर दवा न करके ओझा को बुलाया जाता। ओझा एक घर में बैठकर लौंग से लौंग उठाता था इसलिए ओझा पर विश्वास बढ़ जाता था। फिर पहलवान या अन्य देवता को उस बीमार व्यक्ति पर सवारी करने की बात करता। फिर वैसा लोग करते। देवी को कभी–कभी बकरा, सूअर का बच्चा या मुर्गे की बलि दी जाती थी यह देवी के नाम पर होता था, फिर चढ़ावे के नाम पर उस गोश्त को शौक से वे खाते थे।"[30]

विवाह एवं देवी के नाम पर होने वाली दावतों से एक ओर जहां निर्धन दलितों पर आर्थिक बोझ बढ़ता है वहीं दूसरी तरफ आर्थिक विपन्नता में स्वास्थ्य एवं शिक्षा जैसे बुनियादी प्रश्न अनसुलझे ही रह जाते हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि ने 'हत्यारे' एवं 'शवयात्रा' जैसी कहानियों के माध्यम से दलित समाज में प्रचलित रूढ़िगत मान्यताओं को प्रमुखता से व्यक्त किया है। 'हत्यारे' कहानी का पात्र सलेसर काम से लौटते ही बीमार हो जाता है। बुखार से उसका शरीर अंगारे–सा तपने लगता है। दो–तीन दिन में उसकी स्थिति और दयनीय हो जाती है शरीर सूख कर कांटा हो जाता है। सलेसर की हालत देख कर परिजन झाड़–फूंक से उसका इलाज करना आरंभ कर देते हैं। उसकी मां, देवी से मन्नतें मांगती है। वह ग्रांम माता को सूअर की बलि चढ़ाने का वादा करती है, परन्तु सारी मन्नतें प्रभावहीन सिद्ध होती हैं। इसी बीच तांत्रिक सूरजा भगत को पुच्छा करने के लिए बुलाया जाता है। 'पुच्छा' दलित समाज में प्रचलित एक तांत्रिक क्रिया है। इस क्रिया के अंतर्गत अज्ञात देवी को सम्बोधित किया जाता है और रोगी के बुरे कर्मों को माफ करने की याचना की जाती है। इस तांत्रिक क्रिया का सबसे क्रूर पहलू है कोड़े से रोगी की पिटाई। तम्बाकू के मद में सूरजा भगत देवी का आह्वान करके कंधे पर रखी चादर को रस्सी के समान ऐंठ कर सलेसर पर बरसाना शुरू कर देता है। बुखार से दुर्बल हुआ शरीर कोड़े की मार सहन नहीं कर पाता है। वह चीखने लगता है इसी बीच सूरजा भगत घोषणा करता है– "कल देवता को एक सूअर चढ़ाओ सब ठीक हो जाएगा। पीपल का प्रेत था। भरी दुपहरी में ये पीपल के नीचे से निकला। चपेट में आ गया था। सूअर की कल ही बलि चढ़ाना है, देर करना ठीक नहीं।"[31]

हाथ तंग होने के बाद भी सलेसर के पिता कालू लम्बरदार राम औतार त्यागी से दौ सौ रूपए ऋण पर लेते हैं। त्यागी महीने भर का सूद काट कर एक सौ साठ रूपए कालू की हथेली पर रख देता है और साथ ही हर महीने चालीस रूपए सूद देने की चेतावनी भी देता है। ऋण के धन पर बस्ती में दावत का आयोजन किया जाता है। शराब और मांस की महक चारों ओर फैल जाती है। तांत्रिक सूरजा सूअर के खून

में पका मांस प्रसाद स्वरूप बीमार जलेसर के मुंह में जबरन डाल देता है। परिणामस्वरूप सलेसर की हालत और अधिक बिगड़ जाती है। सवेरा होने से पहले ही वह मर जाता है। एक अन्य कहानी 'शवयात्रा' में जब कल्लन की लड़की सलोनी बुखार से पीड़ित होती है। तब कल्लन के पिता झांड फूंक की सलाह देते हुए कहते हैं "किसी झांड़ फूंक वाले कू बुलाऊँ.... कहीं कुछ अपेरा न हो।"[32]

कल्लन अपने पिता की सलाह न मानकर सलोनी को अस्पताल ले जाने का निर्णय करता है। ओम प्रकाश वाल्मीकि के ग्रामीण पात्र अधिकांशतः रूढ़ीवादी मानसिकता से ग्रस्त हैं। वे स्वयं अनेक उपजातियों में विभाजित हैं। निम्न जाति और उच्च जाति की अवधारणा दलित समाज की एकता एवं विकास में बाधक है। 'शवयात्रा' और 'मैं ब्राह्मण नहीं हूँ' कहानियां दलित समाज में व्याप्त इस प्रकार के अन्तर्विरोध को व्यक्त करती हैं। 'शवयात्रा' के कथा के केन्द्र में दलित समाज की दो भिन्न जातियां हैं– चमार समुदाय और बल्हार समुदाय। चमार समुदाय की दृष्टि में बल्हार समुदाय समाज व्यवस्था में सबसे नीच यानी अछूतों में भी अछूत है। बल्हार समुदाय के प्रति चमार समुदाय के लोगों का व्यवहार सवर्ण जाति के जमींदारों की ही भांति हैं। बल्हार जाति का सुरजा समूचे गांव से कटा हुआ, उपेक्षित एवं तिरस्कृत जीवन जी रहा है। पुत्र कल्लण के शहर से आते ही सुरजा पक्का घर बनाने की जिद करता है कल्लन गांव की रीत जानता है "बापू यहां न तो इज्जत है न रोटी, चमारों की नज़र में भी हम सिर्फ बल्हार हैं।"[33] वह सुरजा से शहर चलने के लिए कहता है परन्तु सुरजा अपने पूर्वजों की जमीन छोड़ने से इनकार करता है। पिता की जिद के आगे कल्लन की एक नहीं चलती। वह पक्का मकान बनाने के लिए ईटों से भरा ट्रक मंगवाता है। सजी ईटों को देखकर चमार समुदाय मे भूचाल–सा आ जाता है। गांव का प्रधान बलराम सिंह बल्हारों को सम्पन्न होता देख बेचैन हो जाता है वह सुरजा को फटकारता है–"अंटी में चार पैसे आ गए तो अपनी औकात भूल गया। बल्हारों को यहां इसलिए नहीं बसाया था कि हमारी छाती पर हवेली खड़ी करेंगे... वह जमीन जिस पर

तुम रहते हो, हमारे बाप दादों की है। जिस हाल में हो... रहते रहो... किसी को एतराज नहीं होगा। सिर उठाकर खड़ा होने की कोशिश करोगे तो गांव से बाहर कर देंगे।"[34]

प्रधान के भय से कोई भी मिस्तरी सुरजा का पक्का मकान बनाने को तैयार नहीं होता है। सुरजा साबिर मिस्तरी को 'मेहनताना पेशगी' भी देने को तैयार है, लेकिन वह भी मकान बनाने की बात टाल जाता है। गाँव आते ही कल्लन की बेटी सलोनी को तेज बुखार हो जाता है गांव का डॉक्टर बल्हार कल्लन के घर आने से मना कर देता है। हालत बिगड़ता देख कल्लन सलोनी को शहर ले जाने का निश्चय करता है। गाँव में यातायात के साधन न होने पर वह सम्पन्न चमारों से बैल गाड़ी मांगता है, लेकिन वे बल्हारों को अपनी गाड़ी देने से साफ मना कर देते हैं। गांव में छुआछूत का वीभत्स रूप देख कर कल्लन दुखी मन से पैदल ही शहर की यात्रा आरंभ करता है कुछ ही दूर जाते ही सालेनी दम तोड़ देती है। गांव के सम्पन्न चमार सलोनी के दाह संस्कार के लिए लकड़ियों की मदद देने में भी असमर्थता जताते हैं और गांव की श्मशान भूमि से भी बल्हारों को वंचित कर दिया जाता है– "चमारों का श्मशान गांव के निकट ही था, लेकिन उसमें बल्हारों को अपने मुर्दे फूँकने की इजाजत नहीं थी। कल्लन की माँ के समय भी ऐसी ही समस्या आई थी चमारों ने साफ मना कर दिया... बल्हारों के मुर्दे को हाथ लगाने या शवयात्रा में शामिल होने गांव का कोई भी व्यक्ति नहीं आया था। 'जात' उनका रास्ता रोक रही थी।"[35]

दलित साहित्य के उद्‌भव के मूल में एक व्यापक विज़न है। वह तथाकथित मुख्यधारा के साहित्य बनाम दलित सहित्य के मध्य युद्ध का वाहन न होकर प्राचीन वर्ण व्यवस्था समाप्त करने के लिए प्रतिबद्ध है। जैसा की वाल्मीकि जी ने स्वयं लिखा है कि "वर्ण व्यवस्था जनित जातिभेद के मूल नियामक तत्वों का विरोध, वैमनस्य पूर्ण समाज में सौहार्द और सामंजस्य पैदा करना... है।"[36]

दलित समाज में व्याप्त जातिगत भेदभाव समूचे दलित समाज के विकास में बाधक है। कहानी 'शवयात्रा' में चमार समुदाय गैर दलित जाति के समान ही बल्हार कल्लन के साथ व्यवहार करते हैं। इस प्रकार का अंतःविरोध बहुत कम दलित

कहानीकारों ने दिखाया है साथ ही वाल्मीकी ने अम्बेडकर के नाम पर हो रही राजनीति का भी पर्दाफाश किया है। यह तथ्य सर्वमान्य है कि बाबा साहेब की मृत्यु के पश्चात रिपब्लिकन पार्टी आफ इंडिया स्वार्थी राजनेताओं के कारण छिन्न–भिन्न हो गई और तथाकथित राजनेताओं ने अन्य पर्टियों के साथ गठजोड़ कर लिया था। अब वे समाजिक परिवर्तन की जगह चंदा जमा करने और नेता बनने की होड़ में लग गए। अम्बेडकर जयन्ती के भाषणों में कल्पना तत्व इतना अधिक मिल गया कि 'दलितोत्थान' शब्द मंचों की शोभा मात्र बनकर रह गई। कहानी 'शवयात्रा' का बल्हार कल्लन अपनी बेटी सलोनी के दाह संस्कार में मद्द हेतु रविदास मंडल, अम्बेडकर युवक सभा के कार्यकर्ताओं से मिलता है, लेकिन उसे निराशा ही मिलती है। बाबा साहेब के ये नुमाइंदे सत्ता में पंहुचते ही अपनी पहचान छुपा कर सत्ता सुख में लिप्त हो जाते हैं।

भारतीय दलित आंदोलन की उपलब्धियों को यदि एक शब्द में कहा जाए तो यह कहा जा सकता है कि इस आंदोलन ने दलित समाज को स्वाभिमान से भरा चेहरा प्रदान किया है। आज दलित समाज की नयी पीढ़ी अपनी जाति छुपा कर यातनामय जीवन व्यतीत नहीं करती है बल्कि 'दलित' पहचान के साथ अपनी अस्मिता की रक्षा करती हैं। भारतीय समाज में 'श्रेष्ठता की अवधारणा' का सीधा संबंध ब्राह्मण वर्ग के साथ रहा है इसका प्रत्यक्ष प्रभाव शिक्षित दलित के नवयुवकों पर पड़ता है। दलित बने रह कर, श्रेष्ठ बना रहना क्या संभव है ? यदि हाँ तो फिर जाति छुपाकर, सवर्ण उपनाम का प्रयोग कर अथवा अपने समाज से कट कर अलग रहना जैसी प्रवृतियां दलित समाज को एक जुट कर पायेंगी ? इसका उत्तर 'नहीं' में ही दिया जा सकता है। दलित समाज की नयी पीढ़ी ने इस झूठे आवरण को उतार कर फेंक दिया है अब दलित समाज सम्मान प्राप्त करने हेतु तथाकथित 'सवर्ण' उपनामों का प्रयोग करने से परहेज कर रहे हैं। 'मैं ब्राह्मण नहीं हूं' कहानी इसी प्रकार के भाव को व्यक्त करती है। 'छद्म सवर्ण उपनाम' दो प्रमुख दलित जाति मिरासी और बढ़ई के बीच कलह का कारण बनती है। मोहनलाल शर्मा और गुलजारी लाल शर्मा के बीच उत्पन्न हुए कलह

को 'सवर्ण मानसिकता' की देन के रूप में देखना चाहिए क्या शर्मा ही श्रेष्ठ हो सकते हैं दलित नहीं ? जैसे प्रश्नों को इस कहानी में उठाया गया है।

मिरासी और बढ़ई जाति का प्रतिनिधित्व करने वाले इन दोनों शिक्षित व्यक्तियों के मध्य 'ब्राह्मणत्व श्रेष्ठता' की धारणा गहरे रूप से पैठ कर गई है। मोहनलाल अपने रिश्तों नातों से ही नहीं बल्कि अपनी पूरी बिरादरी से नाता तोड़ कर सवर्ण बन जाता है, किन्तु बेटे अमित की शादी गुलजारी लाल की लड़की सुनीता के साथ तय होने पर वह अपनी बहन को विवाह में शामिल होने के लिए आमंत्रित करता है। स्टेशन से घर आते हुए ऑटो चालक गुलाटी और मोहनलाल की बहन के पारस्परिक संवाद से उनकी वास्तविक जाति प्रकट हो जाती है। परिणामस्वरूप स्वयं बढ़ई होने के बाद भी गुलजारी लाल विवाह संबंध तोड़ देता है। दोनों परिवार श्रेष्ठता के भ्रम में अपनी निम्न जाति को पिछड़ी मान कर उसे गुप्त रखते हैं। ऐसे में दलित समाज का प्रतिनिधित्व करने वाली नयी पीढ़ी सुनीता जो स्वयं बैंक में कार्यरत है बलपूर्वक खुद को बढ़ई कहने से परहेज नहीं करती है–"पापा... आप बने रहिए श्रेष्ठ...ब्राह्मण...मिरासी से ऊंचे। लेकिन मैंने कभी भी अपने आपको ब्राह्मण नहीं माना...यह सच्चाई है। न मैंने 'शर्मा' होने की आड़ में कभी ब्राह्मण बनने की कोशिश की। मेरे लिए ब्राह्मण होना ही इंसान की श्रेष्ठता का प्रतीक नहीं है।....आप जितना मातम मनाएं...मैं शादी अमित से ही करूंगी।"[37] यह दलित आंदोलन का ही सुखद परिणाम है जो दलित समाज को इस अन्तःद्वंद्व से मुक्ति दिलाता है। सुनीता और अमित दोनों ब्राह्मण टैग को छोड़ते हुए दलित टैग से विवाह करते हैं। सुनीता तो स्वयं कहती है मेरे लिए ब्राह्मण होना ही इंसान की श्रेष्ठता का प्रतीक नहीं है यानी दलित समाज भी श्रेष्ठ हो सकता है तभी तो प्रसिद्ध दलित विचारक कांचा इलैया सम्पूर्ण भारतीय समाज के दलितीकरण होने का सुखद स्वप्न देखते हैं। यह कहानी दलित समाज की गतिशीलता एवं स्वाभिमान को प्रकट करती है साथ ही पारम्परिक अंतःद्वंद्व को समाप्त कर एक मुकम्मल एकजुटता का संदेश भी देती है। दलित समाज की समस्याओं का समाधान जातिगत

पलायन से नहीं होगा, बल्कि उससे मुकाबला करके ही हो सकता है। एक तरह से यह कहानी शवयात्रा कहानी का समाधान प्रस्तुत करती है।

वर्ण व्यवस्था और कामरेड के रूप में शोषित दलित

परिवर्तन का चक्र प्रत्येक वस्तु एवं विचार को उलट–पलट रहा है। नये विचारों के आगमन से पुराने विचार दम तोड़ रहे हैं। 18वी सदी के पश्चात का युग इस प्रवृति को व्यापक रूप से दर्शा रहा है। विचारधाराओं की तर्कपूर्ण टकराहट सनातनी रूढ़ीवादी विचारधाराओं को चुनौती दे रही है। चार्ल्स डार्विन और कार्ल मार्क्स इसी प्रकार के प्रबुद्ध विचारक हैं। इन विचारकों ने स्थिर दुनिया को परिवर्तनशीलता का एहसास कराया था। अपने समय से विपरीत धारा में चलने के कारण इन्हें रूढ़िवादी समाज का कोप भी सहना पड़ा था। यदि भारतीय समाज की गतिशीलता को देखें तो नितांत निराशा ही मिलती है। आज भी भारतीय समाज में एक ऐसा वर्ग है, जो सड़ी–गली मान्यताओं के साथ ही जीवन व्यतीत करना चाहता है और भावी पीढ़ी के तर्कपूर्ण संवादों की धार को निरंतर कुंद करने का प्रयास करता है। कहानी 'ब्रह्मास्त्र' इसी प्रकार के भाव को व्यक्त करती है। कहानी में कथा का संबंध सवर्ण विवाह में दलितों के प्रवेश से है। अरविन्द नैथानी और कंवल कुमार दोनों मित्र हैं। अरविन्द की शादी की तारीख पक्की होते ही वह कंवल कुमार को निमन्त्रण देता है। 'जरूर आना है' की शर्त के साथ साधिकार विवाह में आमंत्रित करता है। अरविन्द की दृष्टि में समाज में जाति व्यवस्था का कोई मूल्य नहीं, कंवल उसका परम मित्र है। मित्र के निमन्त्रण को वह स्वीकार कर विवाह के दिन निर्धारित समय पर पहुंच जाता है, लेकिन जैसे ही वह बारात जाने के लिए बस के पायदान पर पैर रखता है पंडित माधव प्रसाद भटट् उसे 'पहचान' लेता है। कंवल के पिता छावनी में सफाई कर्मचारी थे, माधव प्रसाद इस तथ्य से परिचित थे। निम्न वर्ण का सवर्ण की बारात में जाना उसे अखरता है। वह अपने तथाकथित जातीय गौरव से प्रेरित होकर वह कंवल से कहता है–"यह किसी डोम चमार की बारात नहीं है। यह नैथानियों की बारात है जो टिहरी में ऊँचे

ब्राह्मणों में जा रही है। इसमें एक डोम के लिए जगह नहीं है... जा.... अपने घर वापस।"[38]

पंडित को चिल्लाता देखा अरविन्द के पिता विष्णु दत्त नैथानी मामले की हक़ीकत से वाकिफ होते हैं। विष्णु दत्त कंवल के प्रति सहानुभूति जताते हुए पंडित को शांत करने की कोशिश करते हैं परन्तु पंडित ब्रह्मास्त्र छोड़ देता है "मैं बारात में नहीं जाऊंगा... मुझे क्षमा कीजिए... मैं यहीं से लौट जाता हूँ.... वह डोम पढ़ा लिखा है उसी से शादी के संस्कार भी करा लेना....।"[39] विष्णु दत्त यह सुनते ही चारों खाने चित्त हो जाते हैं। पारिवारिक पुरोहित का वाक्य सुनकर उसके अंतःस्थल में उथल–पुथल मच जाती है। वह अपने बेटे अरविन्द को समझाते हुए कहते हैं "अब तुम ही बताओ पंडितजी जिद़ पर अड़े हैं... कह रहे हैं वह जाएगा तो मैं नहीं जाऊँगा, बेटा अगर हमने पंडित की बात नहीं रखी तो जात–बिरादरी हम पर थूकेगी।"[40]

जात–बिरादरी की खातिर विष्णु दत्त पंडित के सामने झुक जाते हैं। पापा को गिड़गिड़ाता देख अरविन्द अपने मन को समझाता है यद्यपि वह सनातन नियम के खिलाफ है, परन्तु सामाजिक परिस्थितियों के आगे विवश है उसकी आंखें छलक आती हैं और आवाज भर्राने लगती है। अरविन्द को दुविधाग्रस्त देख कर कंवल स्वयं उसे इस कटु वातावरण से मुक्ति दिलाता है– "दिल छोटा मत कर यार... अपना क्या है... तुम खुशी–खुशी बारात लेकर जाओ।... कंवल! मुझे माफ कर देना... यहां कुछ नहीं हो सकता है... सड़ चुका है सब कुछ... अरविन्द अपनी बात पूरी नहीं कर पाया था... फफक पड़ा था।"[41]

वाल्मीकि जी ने 'ब्रह्मास्त्र' कहानी में अरविन्द के रूप में एक अनूठा चरित्र उपस्थित किया है जो सवर्ण होते हुए भी जातिगत भेदभाव और छुआछूत के विरूद्ध है। उनकी एक अन्य कहानी 'सलाम' में दलित पात्र हरीश के विवाह में उसका ब्राह्मण मित्र कमल खुशी–खुशी शरीक होता है और दलित होने के भ्रम में गैर दलितों के अत्याचार का भी शिकार बनता है। इन परिदृश्यों के देखकर नैथानी समाज के एक अत्यंत छोटे से हिस्से में कहीं ना कहीं गतिशीलता के भान अवश्य ही होता है।

अरविन्द अपने पिता का विरोध कर पाने की स्थिति में नहीं है। भावनाओं के आगे वर्ण व्यवस्था विजयी हो जाती है। शिक्षित दलित के साथ भी नैथानी समाज परम्परागत ढंग से ही व्यवहार करते हैं। मानसिक कड़वाहट उनकी चेतना में घर कर गई है इसलिए मार्क्सवाद भी भारतीय दलित समाज की समस्याओं को नहीं सुलझा सका है। वह भारत के सामाजिक परिदृश्य को समझे बिना ही समाजवाद स्थापित करने का स्वप्न देखने लगा था। बाबा साहेब ने ऐसे ब्राह्मण मार्क्सवादियों को आड़े हाथों लेते हुए लिखा हैं– "यदि समाजवादी समाज को एक निश्चित वास्तविकता में बदलने के इच्छुक हैं। तो उन्हें स्वीकार करना होगा कि समाज सुधार की समस्या मूल–भूत समस्या है... और वे इससे बचकर नहीं भाग सकते।"[42]

भारतीय मार्क्सवाद ब्राह्मणवाद के घेरे को कभी तोड़ ही नहीं सका, वह यह समझ ही नहीं पाया कि दलितों की मूल समस्या आर्थिक नहीं है। सामाजिक एवं धार्मिक उपेक्षा ही उनके आर्थिक विपन्नता का कारण बनी है। मात्र स्वयं को कामरेड कह देने से दलितों की समस्याएं समाप्त नहीं हो सकती हैं। वह जातिगत भेदभाव से मुक्ति चाहता है इस विषय में बाबा साहेब लिखते हैं कि "जाति एक ऐसा दैत्य है जो आपके मार्ग में खड़ा है आप जब तक इस दैत्य को नहीं मारोगे, आप न कोई राजनीतिक सुधार कर सकते हैं, न कोई आर्थिक सुधार... जाति प्रथा केवल श्रम का विभाजन नहीं हैं यह श्रमिकों का विभाजन भी है।"[43]

इस विषय में कोई मतभेद नहीं है कि भारत में मार्क्सवादी विचारधारा के समर्थकों में ब्राह्मणों की संख्या सर्वाधिक रही है। वे अप्रत्यक्ष रूप से मार्क्सवादी चोले में ब्राह्मणवाद का ही पोषण कर रहे हैं। 'घुसपैठिये' में संकलित कहानी 'प्रमोशन' का दलित पात्र सुरेश स्वीपर पद से कामगार के पद पर पदोन्नति प्राप्त करने के बाद भी वह मूल रूप से स्वीपर ही रहता है। मजदूर बन जाने पर उसकी खुशी का ठिकाना न रहा मानों उसके ऊपर लगा स्वीपर का कलंक धुल गया हो, वह अपनी पत्नी से कहता है "अब हम भंगी नहीं रहे। मजदूर हो गए है... मजदूर–मजदूर भाई–भाई।"[44] वह सुबह फैक्टरी पहुंचते ही लाल झंड़ा यूनियन का मेम्बर बन जाता है। यूनियन द्वारा किए जाने

वाले धरना प्रदर्शन और गेट मीटिंग आदि की व्यवस्था करने में वह अपनी पूरी ताकत लगा देता है, पंडाल बनाने से लेकर नारे लगाने में उसका कोई प्रतिद्वंदी नहीं था। यूनियन के नेता मार्क्सवाद के नाम पर सुरेश का शारीरिक शोषण करते हैं। सुरेश की पत्नी उसके कार्यों को देखकर भयभीत हो जाती है उसके मन में बार–बार सन्देह उत्पन्न होता है–"अजी, कल आपके साथ कुछ ऐसा वैसा हो जावे, तो ये लोग तब भी धरने पर बैठेंगे ? आपका साथ देंगे।"[45]

सुरेश की पत्नी शांति मानो भारतीय मार्क्सवादियों से प्रश्न करती है कि क्या मार्क्सवादी विचारधारा भारतीय वर्णव्यवस्था से दलित सुरेश की रक्षा करने में सक्षम हैं ? कामरेड के भ्रम में भ्रमित सुरेश कहता है– "स्वीपर था अब नहीं हूँ... अब तो मैं मजदूर हूँ... कामगार... मजदूर–मजदूर भाई–भाई... इन्कलाब जिन्दाबाद... उसका स्वर तेज होने लगा।"[46]

शांति को यह उत्तर संतोषजनक नहीं लगता है। वह चुपचाप काम में लग जाती है। इसी बीच फैक्टरी में घटी एक घटना सुरेश को सत्य से साक्षात्कार कराती है। फैक्टरी का सुपरवाइजर किशोरी लाल गौतम मजदूरों के लिए दूध लेने की जिम्मेदारी सुरेश को सौंपता हैं। सुरेश दूध लाकर वर्करों को आवाज लगाता है, लेकिन आज कोई भी वर्कर दूध लेने नहीं आता है। दूध के लिए पहले जैसी आपा–धापी न देखकर किशोरी लाल कुछ समझ नहीं पाता है। तभी उसका चहेता वर्कर अब्दुल कादिर इस रहस्य से पर्दा हटाते हुए कहता है– "साहब आपको पता नहीं... सुरेश स्वीपर है... उसके हाथ की कोई चीज कैसे खा पी सकता है।"[47]

कामरेड बनकर भी सुरेश मूलतः स्वीपर ही रहता है। वाल्मीकि जी की 'प्रमोशन' कहानी मार्क्सवाद का यथार्थ चेहरा खोल कर रख देती हैं। विचारणीय बात यह है कि क्या ब्राह्मण नेतृत्व से सम्पन्न भारतीय मार्क्सवाद दलितों की समस्या को हल करने में सक्षम है ? विचारधारा के स्तर पर वे चाहे समाजवाद की बात ही क्यों न करें, परन्तु वे व्यवहारिक स्तर पर मात्र मनुवादी व्यवस्था के पोषक के रूप में ही सामने आते हैं।

संदर्भ स्रोत्र

1. ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, 2008, दिल्ली, पृ. 13
2. वही पृ. 13
3. वही पृ. 13
4. शरणकुमार लिम्बाले, दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र (हिन्दी अनुवादः रमणिका गुप्ता), वाणी प्रकाशन, 2000, पृ. 76
5. वही, पृ. 76
6. वसुधा–58 (पत्रिका), जुलाई–सितम्बर, 2003, पृ. 292
7. ओमप्रकाश वाल्मीकि, घुसपैठिये (कहानी संग्रह), राधाकृष्ण प्रकाशन, 2003, दिल्ली, पृ. 17
8. वही, पृ. 17
9. वही, पृ 15
10, रोबिन जेफ्री, भारत समाचार पत्र क्रान्ति, (हिन्दी संस्करण) भारतीय जनसंचार संस्थान, 2004, दिल्ली, पृ.151
11. वही, पृ. 150
12. वही, पृ. 152
13. ओमप्रकाश वाल्मीकि, घुसपैठिये (कहानी संग्रह),राधाकृष्ण प्रकाशन, 2003, दिल्ली, पृ. 68
14. वही, पृ, 69
15. वही, पृ. 69
16. वही, पृ. 71
17. वही, पृ. 73
18. डॉ. अम्बेडकर वाड़मय, खण्ड 7, डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान, कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार, दिल्ली, 1998, पृ. 213–214

19. ओमप्रकाश वाल्मीकि, घुसपैठिये (कहानी संग्रह), राधाकृष्ण प्रकाशन, 2003, दिल्ली, पृ. 22
20. वही, पृ.25
21. वही, पृ. 24
22. वही, पृ. 24–25
23. वही, पृ. 26
24. वही पृ. 98
25. डॉ. अम्बेडकर वाड़मय, खण्ड 14, डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान, कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार, दिल्ली, 1998, पृ. 73
26. कांचा इलैया, मैं हिन्दू क्यों नहीं हूँ (हिन्दी अनुवादः मुकेश मानस), आरोही बुक ट्रस्ट, 2003, दिल्ली, पृ. 9 (भूमिका से)
27. प्राचीन भारत, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, 2000, दिल्ली, पृ. 35
28. डॉ. भीमराव रामजी अम्बेडकर, भगवान बुद्ध और उनका धर्म (हिन्दी अनुवादः भदन्त आनन्द कौसल्यायन), सिद्धार्थ प्रकाशन, 2001, बम्बई, पृ.166–167
29. ओमप्रकाश वाल्मीकि, घुसपैठिये (कहानी संग्रह), राधाकृष्ण प्रकाशन, 2003, दिल्ली, पृ. 34–35
30. माता प्रसाद गुप्त, झोपड़ी से राजभवन (आत्मकथा), नमन प्रकाशन, 2002, दिल्ली, पृ. 36
31. ओमप्रकाश वाल्मीकि, घुसपैठिये (कहानी संग्रह), राधाकृष्ण प्रकाशन, 2003, दिल्ली, पृ. 93
32. वही, पृ. 41
33. वही, पृ. 37
34. वही, पृ. 39
35. वही, पृ. 42

36. दलित दखल, सं. श्योराज सिंह 'बेचैन' साहित्यिक संस्थान, 2001, गाजियाबाद, पृ.27
37. ओमप्रकाश वाल्मीकि, घुसपैठिये (कहानी संग्रह), राधाकृष्ण प्रकाशन, 2003, दिल्ली, पृ. 66
38. ओमप्रकाश वाल्मीकि, घुसपैठिये (कहानी संग्रह), राधाकृष्ण प्रकाशन, 2003, दिल्ली, पृ. 83
39. वही, पृ. 84–85
40. वही, पृ. 86
41. वही,पृ. 87
42. डॉ. अम्बेडकर वाड़मय, खण्ड 1, डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान, कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार, दिल्ली, 1993, पृ. 65
43. वही, पृ. 66
44. ओमप्रकाश वाल्मीकि, घुसपैठिये (कहानी संग्रह), राधाकृष्ण प्रकाशन, 2003, दिल्ली, पृ. 45
45. वही पृ. 48
46. वही पृ. 48
47. वही, पृ. 50

अध्याय चार

'घुसपैठिये' की भाषा एवं शिल्प

किसी भी भाषा के साहित्यिक प्रतिमान समकालीन सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों के द्वारा निर्धारित एवं संचालित होते हैं। सामान्यतः परम्परागत रूप से काव्य सृजन का संबंध विभिन्न राजवंशों के साथ रहा है और राज्य कवियों ने कल्पित साहित्यिक प्रतिमानों से राजाओं के हितों का ही पोषण किया है। भारत वर्ष में संस्कृत एवं आरंभिक हिन्दी भाषा (जिसमें अपभ्रंश, ब्रज एवं अवधी आदि भाषाएं शामिल हैं) में सृजित काव्य का स्वरूप भी कुछ इसी प्रकार का रहा है। हिन्दी साहित्य में अधिक संख्या में उपस्थित राज्याश्रित कवियों के भगीरथ प्रयासों के द्वारा ही हिन्दी साहित्य में प्रशस्ति काव्य जैसी अवधारणा का जन्म हुआ है। उक्त परिस्थितियों में जिस साहित्यिक भाषा एवं प्रतिमानों का सृजन हुआ उसने प्रत्यक्ष रूप से अभिजात वर्ग की रूचियों एवं इच्छाओं का ही पोषण किया। संस्कृत एवं हिन्दी भाषा में काव्याचार्यों की सशक्त परम्परा एवं काव्य–शिक्षा जैसे ग्रंथों ने साहित्य को कृत्रिम भावों से समृद्ध कर, काल्पनिक एवं चमत्कृत कर देने वाली काव्य भाषा एवं साहित्यक प्रतिमानों को स्थापित कर दिया। परिणामस्वरूप रस, छंद, अंलकार, वक्रोक्ति, कवि–समय एवं औचित्य सिद्धान्त जैसे संस्कृत काव्यशास्त्रीय प्रतिमान हिन्दी साहित्यिक आलोचना के भी प्रमुख अस्त्र–शस्त्र बन गए।

हिन्दी साहित्य के आधुनिक युग के प्रथम दो चरण भारतेन्दु युग एवं द्विवेदी युग परम्परागत भाषा एवं साहित्यिक प्रतिमानों तथा नवीन भाषा एवं साहित्यिक प्रतिमानों के संघर्ष का काल है। आधुनिक युग के रचनाकारों का दावा था कि वह साहित्य को सामंतवाद के चंगुल से निकाल कर जनता के बीच ले आए हैं और नवीन साहित्यिक प्रतिमान, प्राचीन काव्य शास्त्रीय ग्रंथों की कार्बन कॉपी न होकर सामान्य मानव जीवन की संघर्षशील कर्मभूमि से निर्मित हुए हैं। राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों के झोंके ने एक बार फिर से हिन्दी साहित्य में स्थापित आधुनिक सामंतवाद के महल को ढ़ाह कर नवीन साहित्यिक भाषा एवं प्रतिमानों के सृजन के

लिए उद्धृत किया। अब तक हिन्दी साहित्य के जो कर्णधार बने हुए थे, उन्हें अब दलित विमर्श की तर्कशीलता और अम्बेडकरवादी साहित्यिक आंदोलन की साहित्यिक भाषा एवं प्रतिमान की चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। बाबा साहेब के संघर्षों के फलस्वरूप दलितों के लिए शिक्षा के द्वार खुले, जिससे भारतीय इतिहास से लेकर भारतीय साहित्य तक सभी प्रश्नों के घेरे में आ गए। हिन्दी साहित्य भी इस प्रश्न से अछूता नहीं रहा। दलित साहित्य के प्रेरणास्रोत कहे जाने वाले नाथ एवं सिद्धों का काव्य, संत काव्य, भाव–भाषा एवं शिल्प की दृष्टि से परम्परागत आलोचकों की आलोचना का केन्द्र बना हुआ है उसे साहित्य के इतिहास में सदैव हाशिए पर ही रखा गया। शिक्षा ने हाशिए के लोगों को चेतनाशील बनाया वहीं उसे आधुनिकता से भी लैस किया। आधुनिकता से लैस शिक्षित दलित समाज ने अपने ऊपर हुए शोषणों व अत्याचारों को लिपिबद्ध करना आरंभ कर दिया है। स्वयं पर हुए अत्याचारों को अभिव्यक्त करने की शैली हिन्दी साहित्य में पूर्व स्थापित शैली से सर्वथा पृथक है। दलितों द्वारा लिखे गए अनुभव हिन्दी साहित्य के लिए नवीन अनुभव थे। यह अनुभव अपने साथ भाषा के नवीन तेवर एवं मारक क्षमता साथ लेकर आए हैं।

हिन्दी दलित साहित्य ने पूर्ववर्ती साहित्य में स्थापित संस्कृत तत्सम शब्दावली की भाषा एवं काव्यशास्त्रीय प्रतिमानों के प्रति असंतोष व्यक्त करते हुए अपना पृथक साहित्यिक प्रतिमान स्थापित किया है। वास्तविकता तो यह कि "इस साहित्य को दलित लिखता है और वह भुक्त भोगी होता है यानी वह प्रवंचनाओं, निषेधों, प्रतिबंधों और अवरोधों के बीच ज़िंदा रहने का आदी होता है, उसे वह लिखता है जो यथार्थ की ज़मीन पर खड़ा है कल्पना के आकाश में नहीं इसलिए उसकी भाषा कुलीन नहीं है। कुलीन भाषा इस काबिल ही नहीं है कि वह दलित की जिंदगी के खुरदरेपन को समेट सके। वह अपनी खुरदरी नुकीली, तीखी, तीती और सीधी–सादी भाषा में लिखता है।"[1] यहां एक तथ्य विशेष रूप से रेखांकित किया जा सकता है कि हिन्दी दलित साहित्य में भाषा सहज रूप से आई है तथा साहित्यिक प्रतिमान हाशिए के लोगों के जीवन से अपनाए गए हैं। यह प्रतिमान हिन्दी साहित्य के किसी आलोचक द्वारा

पूर्वस्थापित अथवा कवि गोष्ठियों में निर्मित नहीं हुए हैं। हिन्दी दलित साहित्य की भाषा तद्भव शब्दावली से युक्त है, जो दलित समाज द्वारा बोली जाती है। हिन्दी दलित साहित्य की भाषा के विषय में ओमप्रकाश वाल्मीकि का कहना है–"दलित साहित्य ने संस्कृतनिष्ठ, परम्परागत साहित्यिक भाषा, काव्यशैली, प्रस्तुतीकरण को नकार कर सर्वग्रही भाषा का प्रयोग किया है। ऐसी भाषा जो दलितों की पीड़ा, अपमान, व्यथा की सही और यथार्थवादी अभिव्यक्ति बन सके। दलित साहित्य की भाषा नकार और विरोध की भाषा है जिसमें युगों की यातनाएं साकार हो उठती है।"[2]

हिन्दी दलित साहित्य ने पहली बार दलितों की भाषा में उनकी वेदना को साहित्य में स्थापित किया है। दलित साहित्य की भाषा प्रारंभ से ही गैर दलित आलोचकों की आलोचना के केन्द्र रहा है। कभी 'गंदी' तो कभी 'अश्लील' भाषा कहकर तथाकथित मुख्यधारा के आलोचकों ने सदैव दलित साहित्य के महत्व को कम करके आंकने का प्रयास किया है, परन्तु संस्कृत, ब्रज तथा अवधी भाषा में व्यक्त अश्लील भंगिमाओं में उन्हें काव्य सौन्दर्य की पराकाष्ठा दिखाई देती है। सवर्ण लेखकों एवं आलोचकों के मन में छिपी मनसा को दलित आलोचक डॉ. धर्मवीर पहचान लेते हैं, उन्होंने कबीर की काव्य भाषा का विवेचन करते हुए लिखा है कि यदि "कबीर की भाषा की आलोचना केवल भाषा को आधार बना कर की जाए तो उसमें गौर किया जा सकता है .....कबीर की भाषा की आलोचना समाज के आधार पर हुई है।"[3]

उक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि हिन्दी दलित साहित्य की भाषागत आलोचना भाषा के आधार पर न करके समाज के आधार पर की जाती है। हम जानते हैं कि "हर भाषा का अपना एक भाषाई संस्कार होता है। उसकी आवश्यकता अनुसार उसके अपने रस, छन्द और अलंकार होते हैं।"[4] हिन्दी में रीतिकाल की समाप्ति के पश्चात् ब्रज बनाम खड़ी बोली का द्वंद्व चलता रहा। परम्परागत मानसिकता के आलोचकों ने खड़ी बोली हिंदी को एक सिरे से नकार दिया था, किन्तु अंत में खड़ी बोली ही काव्य भाषा के रूप में स्थापित हुई, इतना ही नहीं उसने 'कामायनी' एवं 'राम की शक्ति पूजा' जैसी रचनाएं हिन्दी साहित्य को दी। उसी प्रकार दलित साहित्य की भाषा का अपना

मिज़ाज है, तद्भव शब्द से युक्त दलित समाज में प्रचलित मुहावरे एवं लोकोक्तियों से भरपूर हिन्दी दलित साहित्य की भाषिक विशेषताएं हिन्दी साहित्य में स्थापित पूर्व प्रतिमानों से सर्वथा अलग हैं। ऐसी भाषा को 'गंदी' या 'अश्लील' कहना अथवा आलोचना के पुराने प्रतिमानों से दलित साहित्य की समीक्षा करना गैर दलित आलोचकों की मानसिक संकीर्णता का ही परिचायक है। संक्षेप में दलित कवि पूर्ण सिंह के शब्दों में कहा जा सकता है :–

"क्यों खोजते हो
मेरी रचनाओं में सौन्दर्य
रस, छंद, अंलकार, भाषा और
विन्यास या शैली
ये तो सब
तुम अघाय हुए लोगों
के पास होगा
हमारे पास तो सच है ।
एक नंगा सच
वही सच
जो तुम और तुम्हारे पूर्वज
सदियों से
हमें देते आए हो
वही हमारा साहित्य है और
वही हमारी जीवन गाथा।" [5]

घुसपैठिये की भाषा एवं शिल्प

भाषा की दृष्टि से कहानी संग्रह 'घुसपैठिये' पर विचार करते हुए उक्त कहानी संग्रह में भाषिक विविधता दिखाई पड़ती है यद्यपि वाल्मीकि जी ने साधारण बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया है। लोक–प्रचलित मुहावरे, वाक्य गठन तथा लोक जीवन से चयनित शब्द, भाषा को प्रवाहमय एवं यथार्थ रूप देते हैं। चूंकि दलित साहित्य स्थापित साहित्य के प्रति नकार एवं विद्रोह का भाव व्यक्त करता है इसलिए घुसपैठिये में संस्कृत के तत्सम शब्दों का सर्वथा अभाव दिखाई पड़ता है। लोक जीवन से तद्भव शब्द 'घुसपैठिये' में अनायास ही चले आए हैं। 'घुसपैठिये' की सर्वप्रमुख भाषिक विशेषता यह है कि यह भाषा दलित समाज की पीड़ा, विद्रोह एवं प्रतिरोध को व्यक्त करने में पूर्णत सक्षम है। दलित पात्रों के द्वारा प्रयुक्त भाषा की भाषिक विविधता अनुभूति की प्रमाणिकता को व्यक्त करती है। कथा के पात्र शहरी एवं ग्रामीण दोनों परिवेश से संबंध रखते हैं। ग्रामीण पात्रों की भाषा में गंवाई पन सर्वत्र झलकता है, वह भाषा कथ्य को अधिक प्रभावशाली बनाती है।

कहानी संग्रह 'घुसपैठिये' में संकलित कहानियां 'यह अंत नहीं', 'शवयात्रा', 'रिहाई', एवं 'हत्यारे', आदि की रचना ग्रामीण परिवेश के आधार पर की गई है। इन कहानियों में ग्रामीण पात्र ग्रामीण भाषा प्रयोग करते दिखाई देते हैं।

मंगलू का कथन–

"विरमा का मां... इब एक मिल्ट के लियों बी उसे अपणी आंखों से दूर न करियो...टेम बुरा आ गिया है... किसी तरियो इसके हाथ पीले हो जा तो कुछ चैन मिलेगा।"[6]

यहां यह तथ्य विशेष रूप से रेखांकित किया जा सकता है कि ग्रामांचल में निवास करने वाले दलित पात्र स्त्री/पुरूष अशिक्षित, पीड़ित एवं मानसिक रूप से दीन–हीन हैं। इस प्रकार के पात्रों द्वारा प्रयुक्त भाषा सहज रूप से उनकी वेदना एवं पीड़ा को व्यक्त करती है। उपरोक्त कथन से मंगलू के मन में व्याप्त दबंगों का भय प्रकट होता है।

दलित साहित्य की भाषा का जन्म शोषण एवं अत्याचार के गर्भ से हुआ है। ग्रामीण दलित पात्रों की भाषा उनके अतीत की व्यथा को भी बयान करती है। शोषण का स्पष्ट प्रभाव पात्रों की भाषा, शब्द एवं वाक्य गठन पर सहज ही देखा जा सकता है।

'घुसपैठिये' में प्रयुक्त भाषा में केवल दलित पात्रों की ही भाषागत विशेषता उजागर नहीं होती, बल्कि गैर दलित द्वारा दलितों के प्रति प्रयुक्त भाषा की विशेषता भी प्रकट होती है। भाषा के माध्यम से गैर दलित पात्रों की दलितों के प्रति मानसिक कटुता एवं जातिगत वैषम्य को सफलता पूर्वक अभिव्यक्त किया गया है मानो, वाल्मीकि की कहानियों के जमींदार/सवर्ण पात्रों के माध्यम से युगों की घृणा व्यक्त हो रही हो। कहानी 'यह अंत नहीं' में किसन अपनी बहन विरमा के साथ हुई घटना की रपट लिखवाने थाने जाता है, थाने के इंस्पेक्टर द्वारा प्रयुक्त भाषा रोंगटे खड़े कर देती है–

"इंस्पेक्टर ने कटाक्ष करते कहा था, "छेड़खानी हुई है बलात्कार तो नहीं हुआ... तुम लोग बात का बतंगड़ बना रहे हो...."फूल खिलेगा तो भौंरे मँडराएंगे ही.. ।" उसने बेशर्मी से खींसे निपोरी। उसके इस तरह बोलने से किसन बौखला गया। उसने तिलमिला कर कहा "तमीज से से पेश आईए।" इंस्पेक्टर का झन्नाटेदार थप्पड़ किसन के गाल पर पड़ा "हरामी की औलाद ये डंडा पूरा उतार दूंगा... तू मुझे तमीज सिखाएगा... ।"[7]

सवर्ण जातियों के व्यंग्यार्थ युक्त संवाद समसामयिक परिस्थितियों से साक्षात्कार कराते हैं। आरक्षण एवं दलितों को प्राप्त शैक्षिक सुविधाओं के प्रति दबंगों की खीझ उनके संवादों से प्रकट होती है। 'दिनेशपाल जाटव उर्फ दिग्दर्शन' कहानी में दिनेशपाल जाटव रोजगार के लिए जब सम्पादक से मिलने पत्र के कार्यालय में पंहुचता है तब उमेश उनियाल, दिनेश का नाम सुनकर व्यंग्य के लहजे में कहता है–

"सम्पादक से मिल लो। आपका ही इंतजार कर रहे हैं आप जैसे प्रतिभा सम्पन्न लोगों की यहां सख्त जरूरत है।"[8]

सम्पादक उसे बैठने के लिए भी नहीं कहता। "आप इतनी दूर से बिना पूर्व सूचना के आए हैं...इससे आपका तो नुकसान हुआ ही है, मेरा भी समय खराब कर रहे हैं... (थोड़ा रूक कर) आपका नाम सुना है अच्छा लिखते हैं, लिखते रहिए। हमारे साप्ताहिक में भी लिखिए... पत्रिका में फंस कर तो लेखक की मौत हो जाती है। आप यहां क्यों आना चाहते हैं ? यह जगह आप जैसे प्रतिभावान लोगों के लिए नहीं है।"[9] इस प्रकार के व्यंग्यार्थ पूर्ण वाक्य काल का अतिक्रमण भी करते हैं। यह वर्तमान में प्रयुक्त होते हुए भी अतीत की घृणा को व्यक्त करते हैं। गैर दलित द्वारा प्रयुक्त यह भाषा मानवीय संवेदनाओं को मुंह चिढ़ाते हुए दलित पात्रों के हृदय को चोट पहुंचाती हैं। दलित रचनाकार अपने ऊपर हुए अत्याचारों को अतिरंजित शैली में व्यक्त नहीं करता है, वह तो अपने समाज में प्रचलित भाषा को सहज रूप से उठा कर साहित्य में रख देता है।

फ्लैश बैक अथवा पूर्व दीप्ति: 'घुसपैठिये' में संकलित कहानियों की एक प्रमुख शिल्पगत विशेषता है फ्लैश बैक अथवा पूर्व दीप्ति। 'घुसपैठिये' और 'जंगल की रानी' कहानी में कथा का विकास फ्लैश बैक के माध्यम से होता है। फ्लैश बैक कथा कहने की वह पद्धति है जिसमें अतीत की स्मृतियों के माध्यम से कथा का विकास होता है। हिन्दी कहानी में सर्वप्रथम फ्लैश बैक तकनीक का प्रयोग चंद्रधर शर्मा गुलेरी की प्रसिद्ध कहानी 'उसने कहा था' में हुआ था। दलित कहानियों में इस पद्धति का महत्व सर्वविदित है, अतीत में दबंगों द्वारा किए गए शोषण की कटु तिक्त स्मृतियों को दलित कहानीकारों ने कथा का रूप दिया है। पात्रों/चरित्रों की स्मृतियों में उत्पीड़न की घटनाएं विद्यमान हैं जो समसामयिक अनुकूल परिस्थितियों के स्पर्श से जागृत हो जाती हैं। ये स्मृतियां कुछ दिन, माह अथवा वर्ष पुरानी हो सकती हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि ने नैथानी, उपाध्याय, मिश्रा एवं शर्मा आदि समुदाय के अत्याचारों को अभिव्यक्त करने हेतु अनेक स्थलों पर फ्लैश बैक पद्धति का सहारा लिया है। कहानी 'घुसपैठिये' का दलित पात्र राकेश मेडिकल कालेज के छात्र सुभाष सोनकर की मृत्यु की घटना सुन कर

अतीत की स्मृतियों में चला जाता है। सम्पूर्ण कथा का विकास अर्थात मिश्रा समुदाय के छात्रों द्वारा मेडिकल कॉलेज के दलित छात्रों का शोषण, उपाध्याय समुदाय का प्रतिनिधि डीन का पक्षपातपूर्ण व्यवहार, छात्रावास में जाति के आधार पर कमरों का आबंटन, छात्रावास में व्याप्त जातिवाद, गैर दलित छात्रों द्वारा दलित छात्रों की पिटाई और अंत में सुभाष सोनकर की आत्महत्या आदि सभी घटनाएं फ्लैश बैक के माध्यम से ही घटित होती हैं।

"उसकी स्मृतियों में वह दिन दस्तक देने लगा था जब रमेश चौधरी सुभाष सोनकर और उसके मित्रों को लेकर आया था।"[10]

कहानी 'जंगल की रानी' की रचना प्रक्रिया में वाल्मीकि दो स्थान पर फ्लैश बैक पद्धति का उपयोग करते हैं। पहला फ्लैश बैक नया सवेरा समाचार पत्र के सम्पादक सोमनाथ के माध्यम से होता है जो स्वयं अस्पताल में मरणासन्न अवस्था में है और अपने ऊपर पर हुए गैर दलित अधिकारियों के अत्याचारों को स्मरण करता है। दूसरा जब वह एक सम्पादक की हैसियत से डिप्टी साहब के घर 'जंगल की रानी' अर्थात दलित युवती कमला की हत्या की जांच–पड़ताल के लिए गया था। डिप्टी साहब के रूखे व्यवहार से लेकर सोमनाथ की मृत्युशय्या तक की कथा के विकास में प्रयुक्त फ्लैश बैक पद्धति कथा को संवेदनशील बनाती है। "अस्पताल के इमरजेंसी वार्ड में अंतिम सांसे गिन रहा था सोमनाथ एक–एक सांस लेने के लिए वह पीड़ा की भयावह राहों से गुजर रहा था आंखों के सामने कमली का चेहरा उसे मौत से जूझने का संकल्प दे रहा था... उसकी समृति में उनकी कठोर मुद्राएं ताजा हो उठी थीं....।"[11]

एक अन्य स्थल पर, कमली की हत्या से संबंधित जांच से प्राप्त सबूतों को सम्पादक सोमनाथ अखबार में प्रकाशित कर देता है जिसे पढ़कर डिप्टी साहब के रोंगटे खड़े हो जाते हैं। कमली के साथ किए गए दुर्व्यवहार की स्मृति दस्तक देने लगती है–

"कमली का निर्जीव शरीर आंखों में तैरने लगा था शरीर में झनझनाहट होने लगी थी घबराहट में माथे पर पसीने की बूंदें चमक आई थीं उसकी स्मृति में खापरी गांव घूमने लगा था जहां गत सप्ताह वे दौरे पर गए थे।"[12]

दलित कथा साहित्य में फ्लैश बैक पद्धति का विशेष महत्व स्वीकार किया जाना चाहिए। जहां स्थापित हिंदी कथा साहित्य में फ्लैश बैक के माध्यम से प्रेमालाप एवं काल्पनिक परिकथाओं की सृष्टि की जाती है वहीं दलित रचनाकार इस तकनीक का उपयोग करते हुए अतीत में हुए जातिगत शोषण एवं छुआछूत की समस्याओं को प्रमुखता से उठाता है।

प्रतीक विधानः रचनाकार अपने भावों को प्रभावशाली ढंग से व्यक्त करने हेतु नाना प्रकार के प्रतीक का उपयोग करता है। प्रतीक अर्थ बोध की दृष्टि से सहायक होते हैं। साहित्यिक प्रतीकों के निर्माण में समसामयिक सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों का महत्वपूर्ण योगदान रहता है, परंतु इस विषय पर अधिक चर्चा न करते हुए दलित साहित्य में प्रयुक्त नवीन साहित्यिक प्रतीकों पर चर्चा करना अधिक उपयुक्त होगा। हिन्दी दलित रचनाकारों ने प्रतीक परम्परा को नया संस्कार दिया है। सवर्ण सहित्य में प्रयुक्त प्रतीक दलित समाज व जाति विशेष की पीड़ा को व्यक्त करने में सक्षम नहीं है। 'अनुभूति' का विशेषण समूचे हिन्दी दलित साहित्य में प्रयुक्त प्रतीकों के प्रति नयी दृष्टि प्रदान करता है। 'घुसपैठिये' में प्रयुक्त प्रतीक विधान हिन्दी दलित साहित्य के प्रतीक विधान का प्रतिनिधित्व करता है। वाल्मीकि जी ने दलितों के शोषण एवं उत्पीड़न को व्यक्त करने वाले नवीन प्रतीकों का प्रभावशाली ढंग से प्रयोग किया है। यह प्रतीक दलितों की मनोदशा को व्यक्त करते हैं। दलित साहित्य में प्रयुक्त प्रतीक पर प्रकाश डालते हुए वाल्मीकि ने लिखा है कि "दलित साहित्य में समाज की पीड़ा, बेबसी, उत्पीड़न और शोषण से उपजे आक्रोश को, सामाजिक यथार्थ को, चित्रित करने के लिए प्रतीकों का प्रयोग हुआ है।"[13]

जातिगत व्यंग्य एवं छुआछूत के अनुभवों को जीवन्त रूप से वर्णन करने में निम्न प्रतीक सहायक रहे हैं–

1. एक–एक शब्द तेज धार वाले औजार की तरह उसे लहूलुहान कर गया था।
2. दुर्गंधमय वातावरण।
3. गर्म सलाखों को जिस्म में बेधना।
4. कान में पिघलता शीशा डालना।
5. नश्तर की तरह बींधना।
6. कई जंगली तेन्दुओं के मुखौटे उतार दने की कोशिश करना।

'घुसपैठिये' में अनेक स्थलों पर गंभीर विचारों को व्यक्त करने वाले प्रतीकों का भी प्रयोग हुआ है जो दलित समाज में पनप रहे प्रतिरोध की भावना को व्यक्त करते हैं–

"गांव की ठहरी हुई जिंदगी में एक भूचाल–सा आ गया था जहां ऊपरी सतह पर शांति और ठहराव थी, वहीं निचली सतह पर तेज हलचल थी जो ऊपरी सतह को तोड़ देने के लिए छटपटा रही थी, लेकिन ऊपरी सतह इतनी सुदृढ़ थी कि उसे तोड़ पाना आसान नहीं था।"[14]

दलित समाज के संघर्ष एवं आंदोलन से निर्मित विभिन्न घटनाएं तथा आन्दोलनों का नेतृत्व करने वाले चरित्रों को प्रतीकात्मक रूप से रचनाकार ने कहानी संग्रह में पर्याप्त स्थान दिया है जैसे–

1. पूना पैक्ट।
2. गोलमेज सम्मेलन।
3. महाड़ आंदोलन।
4. बाबा साहब का फोटो वाला कलेण्डर।
5. महात्मा बुद्ध की तस्वीर वाला पेन।

उपरोक्त सभी घटनाएं एवं इतिहास पुरूष प्रतीकात्मक रूप से दलित साहित्य का मुख्य अंग बन कर उभरे हैं।

जीवन्त भाषाः 'घुसपैठिये' में प्रयुक्त जीवन्त भाषा का निर्माण वातानुकूलित संगोष्ठियों में न हो कर हाशिए के लोगों के जीवन की प्रयोगशाला में हुआ है। सामान्य

रूप से शब्दों की अपेक्षा चित्रों का अधिक महत्व स्वीकार किया जाता है और यह माना भी जाता है कि एक चित्र हजार शब्दों से भी ज्यादा प्रभावशाली होता है। ऐसी स्थिति तब उत्पन्न होती है जब अनुभूति की सघनता पर कृत्रिमता का आवरण चढ़ा होता है। गहरे मानवीय सरोकार से संबंधित रचना के लिए लेखक और समाज के बीच तादात्मय होना आवश्यक है तभी रचनाकार की रचना अधिक जीवन्त एवं गतिशील होगी। दलित कहानियों की भाषा के विषय में विमल थोरात ने ठीक ही लिखा है– "दलित कथाकार ने कहानी की विषय वस्तु के निर्वाह के लिए जिस भाषा की रचना की है, वह उसकी अपनी गढ़ी हुई, संघर्ष से उठकर आयी जीवंत और विशिष्ट भाषा है।"[15]

कहानी संग्रह 'घुसपैठिये' की भाषा गहरे मानवीय सरोकारों को समेटे हुए है। वह दलित समाज की बेचैनी, मानसिक पीड़ा, दलित होने की मनोग्रंथि, जाति सूचक व्यंग्य आदि को जीवन्त रूप में प्रस्तुत करती है। वाल्मीकि की कथा शैली सजीव और जीवन्त है यह शैली उन्हें अपने जीवन संघर्ष एवं अपने समाज की संवेदना से मिली है। जो उनके कथा कहने के ढंग को और अधिक सजीव बनाता है। कहानी 'मुम्बई कांड' में वे किसी जातीय दंगे का प्रत्यक्ष चित्र उपस्थित नहीं करते हैं। हत्या मार–काट की घटनाएं प्रत्यक्ष रूप से नहीं आती हैं मात्र सुमेर की मनःस्थिति ही 'मुम्बई कांड' की भयावह स्थिति को प्रभावशाली ढंग से व्यक्त करने में सक्षम है–

"रात के समाचारों ने उसे और ज्यादा क्षुब्ध कर दिया था। वह आक्रोश से भर उठा था। समाचारों में पुलिस फायरिंग में मारे गए लोगों की लाशें देखकर वह हतप्रभ रह गया था। उसने अपनी साँसे घुटती हुई–सी महसूस की थी। गोलियों के जख्म उसने अपने जिस्म पर महसूस किये थे... वह किसी भी राजनीतिक दल का समर्थक नहीं था, न किसी का विरोधी ही था। उसकी राजनीतिक जागरूकता सिर्फ वोट डालने तक ही सीमित थी। लेकिन पिछले कुछ वर्षों की हलचलों ने उसे बेचैन कर रखा था। मंडल, अयोध्या और उत्तराखंड मुद्दों ने उसके विश्वास को ही तोड़ा था।"[16]

वाल्मीकि सीधी सपाट शैली में सुमेर की मनःस्थिति को उद्घाटित करते हैं। मंडल और अयोध्या जैसे मुद्दे दलितों के अन्तःस्थल में उथल–पुथल मचा देते हैं।

सुमेर की यही स्थिति है, सुमेर दलित समाज का प्रतिनिधि पात्र है, अम्बेडकर की मूर्ति का अपमान उसे गहरे रूप से व्यथित कर देता है। उसके हदय में आक्रोश का सैलाब उमड़ने लगता है–

"उस हादसे की प्रतिध्वनियां उसे बेचैन कर रही थीं। वह अपने अन्दर एक तूफ़ान महसूस कर रहा था। मुम्बई में डॉक्टर अम्बेडकर की मूर्ति को अपमानित किया जाना और फिर अम्बेडकर समर्थकों पर गोली चलाना, उसके बचे खुचे विश्वास को तोड़ रहा था.... उस रात वह ठीक से सो नहीं पाया था। रह रहकर मुम्बई में मारे गए लोगों के रक्त रंजित चेहरे उसके सामने आ रहे थे।"[17]

एक अन्य कहानी 'प्रमोशन' के दलित पात्र सुरेश के प्रति पांडे जाति के व्यक्ति द्वारा छुआछूत प्रकट रूप से नहीं किया जाता है, किन्तु मानसिक रूप से वे स्वीपर सुरेश के हाथ की छुई हुई चीज लेने से परहेज करता है। सुरेश खुद समझ नहीं पाता है कि आज वर्कर दूध लेने के लिए आपा–धापी क्यों नहीं मचा रहे हैं जबकि रोज इसके लिए घमासान मचता है। सुरेश की जाति को लेकर होने आपसी 'खुसुर–पुसुर' और उसके बाद दूध न लेने का बहाना बनाना आदि सभी घटनाओं का वाल्मीकि जी ने सजीव ढंग से वर्णन किया है यथा–

"सुरेश दूध की केन के पास खड़ा, उनके आने का इंतजार कर रहा था। जब घंटे भर तक भी कोई दूध लेने नहीं आया, तो उसकी परेशानी बढ़ गई थी। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि वह क्या करे। ज्यादा देर होने पर दूध फट सकता था। आखिर थक–हार कर उसने सुपरवाइजर से कहा, "साहब, दूध ले आया हूं ...लेकिन ... कोई दूध नहीं ले रहा है।"

"क्यों ?" सुपरवाइजर ने हैरानी से पूछा।

"पता नहीं साहब ..." सुरेश कुछ नर्वस होने लगा था।

"ठीक है, तुम यहीं रूकों ...दूध के पास ...." सुपरवाइजर ने हिदायत दी।

\+ + + + +

उसने शिफ्ट मुकादम को बुलाया, "मिस्त्री आज कोई दूध क्यों नहीं ले रहा है ?"

मिस्त्री ने कोई उत्तर नहीं दिया हाँ, धीमे से कहा, "साहब सुरेश को यह ड्यूटी मत दीजिए।"[18]

मशीन की तेज गड़गड़ाहट में सुपरवाइजर मिस्त्री की बात नहीं सुन सका अंत में उसने अपने चहेते वर्कर अब्दुल कादिर से पूछा–

"अब्दुल ....दूध नहीं लेने का चक्कर क्या है ?

"साहब जाने दो ...नहीं लेते हैं, तो न ले। आपने तो मंगा दिया है, आपकी जिम्मेदारी खत्म।" अब्दुल ने भी टालने की कोशिश की।

"नहीं ...लेकिन पता तो चले ?। सुपरवाइजर ने जोर दिया।

"साहब, सुरेश को इस काम में मत लगाईए," अब्दुल ने कहा।

"लेकिन क्यों ?" सुपरवाइजर ने ताज्जुब से पूछा।

"अब आपको क्या बताएं ...." अब्दुल ने टालना चाहा ।

"खुलकर बोलो ...बात क्या हैं ? " सुपरवाइजर ने और अधिक जोर देकर पूछा।

"साहब आपको नहीं पता ...सुरेश स्वीपर है ...उसके हाथ की चीज कोई कैसे खा–पी सकता है," अब्दुल ने आखिर रहस्य खोल ही दिया।[19]

इस प्रकार भाषा के माध्यम से सजीव एवं विषाक्त वातावरण का निर्माण करना किसी भी रचनाकार के लिए अत्यंत कठिन कार्य है। गैर दलित की आपसी खुसुर–पुसुर, काम में लगे होने का दिखावा करना, और अंत में जाति का रहस्य खुलना, एक प्रकार का मनुवाद है। सवर्णों की मानसिक कटुता है। जो दलितों के प्रति अव्यक्त रूप में उनके मन में विद्यमान रहती है और अवसर आते ही प्रकट हो जाती है।

वाल्मीकि जी इस प्रकार के अव्यक्त भावों को व्यक्त करने के लिए सटीक वाक्यों एवं शब्दों का चयन करने में पूर्णरूप से सक्षम रहे हैं। कहानी 'कूड़ाघर', 'दिनेश पाल जाटव उर्फ दिग्दर्शन' एवं 'हत्यारें' आदि कहानियों में अनेक स्थलों पर वाल्मीकि

जी ने इस प्रकार के अनेक सजीव संवादों के द्वारा दलित समाज की विविध समस्याओं को व्यक्त किया है।

वाल्मीकि जी ने दलित समाज में प्रचलित **लोक मुहावरों** को प्रभावशाली ढंग से संवादों में पिरोया है। कहानी का पाठक स्वयं को दलित समाज के करीब महसूस करता है यही जीवन्तता दलित कहानी की पहचान है। कहानी 'शवयात्रा' का बल्हार सुरजा गांव में घर बनाना चाहता है लेकिन गांव का प्रधान बल्हार सुरजा के इस कदम की आलोचना करते हुए उसे फटकारता है–

"सुरजा को देखते ही बलराम सिंह चीखा अंटी में चार पैसे आ गए तो अपनी औकात भूल गया। बल्हारों के इसलिए यहां नहीं बसाया था कि हमारी छाती पर हवेली खड़ी करेंगे.... वह जमीन जिस पर तुम रहते हो, हमारे बाप दादों की है। जिस हाल में हो..... रहते रहो.....।"[20]

अंटी में चार पैसे आना, अपनी औकात भूलना, तथा छाती पर हवेली बनाना–जैसे वर्चस्ववादी लोक प्रचलित मुहावरे कथा को जीवन्तता प्रदान करते हैं। इसी प्रकार 'यह अंत नहीं', 'प्रमोशन', 'कूड़ाघर' जैसी कहानियों में प्रयुक्त संवाद की शैली दलितों के जीवन से गहरे रूप में सरोकार रखती है।

संदर्भ स्रोत

1. भारतीय दलित साहित्यः प्ररिप्रेक्ष्य, (सं.) कमला प्रसाद, वाणी प्रकाशन, 2003, दिल्ली पृ. 330
2. ओमप्रकश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, 2008, दिल्ली, पृ. 81
3. डॉ. धर्मवीर, कबीर के आलोचक, वाणी प्रकाशन, 1998, दिल्ली, पृ. 61
4. वही पृ. 60
5. अपेक्षा (पत्रिका), जुलाई–सितम्बर, दिल्ली, 2005, पृ. 53
6. ओमप्रकाश वाल्मीकि, घुसपैठिये (कहानी संग्रह), राधाकृष्ण प्रकाशन, 2003, दिल्ली, पृ. 23
7. वही, पृ. 24–25
8. वही, पृ. 25
9. वही, पृ. 68–69
10. वही, पृ.13
11. वही, पृ. 96
12. वही, पृ. 99
13. ओमप्रकश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, 2008, दिल्ली, पृ. 84
14. ओमप्रकाश वाल्मीकि, घुसपैठिये (कहानी संग्रह) राधाकृष्ण प्रकाशन, 2003, दिल्ली, पृ. 21
15. साखी (पत्रिका) अंक 17, वाराणसी, जुलाई–सितम्बर, 2008 पृ. 28
16. ओमप्रकाश वाल्मीकि, घुसपैठिये, राधाकृष्ण प्रकाशन, 2003, दिल्ली, पृ. 30–31
17. वही, पृ. 31
18. वही, पृ. 49
19. वही, पृ. 49–50
20. वही, पृ. 39

उपसंहार

तीव्र गति से विकासमान हिन्दी दलित साहित्य का स्वरूप न केवल अखिल भारतीय है बल्कि यह संवेदना की दृष्टि से वैश्विक धरातल को भी प्रभावशाली ढंग से स्पर्श करता है। दलित साहित्य का उद्‌भव एवं विकास आजादी के पश्चात बाबा साहेब के परिनिर्वाण के बाद हुआ है। इसके मूल में बाबा साहेब का समतामूलक समाज–दर्शन की स्थापना है। जो परम्परागत वर्ण व्यवस्था के आधार पर न होकर, मानवीयता के उदात्त मूल्यों पर आधारित होगा। यह मानवीयता पूर्ण रूप से लौकिक है और मनुष्य केन्द्रित है। वह 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' पर आधारित वर्चस्वशाली संस्कृति के प्रति असंतोष व्यक्त करता है। दलित साहित्य समाज के बहुसंख्यक दलितों के उत्थान हेतु प्रतिबद्ध है। अपने इस कार्य में वह मानव और मानव के बीच अलगाव पैदा करने वाले शास्त्र, प्रतीक, एवं मिथकों को नकार कर उसे नया संस्कार देता है और परम्परा के नाम पर सदियों से चली आ रही रूढ़ियों की वैज्ञानिक जांच भी करता है। कर्मफल, भाग्य, पुनर्जन्म, ईश्वरीय दण्ड विधान जैसी मान्यताओं के आधार पर ही तथाकथित सवर्ण समुदाय ने दलित व आदिवासी समाज का शोषण किया है। उनके हितों को सदैव नकारने का ही प्रयास किया है। ओमप्रकाश वाल्मीकि अपने कहानी संग्रह 'घुसपैठिये' में बहुजन समाज की समस्याओं को विभिन्न दृष्टिकोण से रखने का प्रयास किया है और सवर्ण मानसिकता से उत्पन्न सामाजिक विद्वेष को रेखांकित करते हैं। यहां एक बात विशेष रूप से रेखांकित की जा सकती है कि 'घुसपैठिये' में अभिव्यक्त दलित समाज आजादी के पचास वर्ष पूरे कर चुके भारत का दलित समाज है।

आजादी के एक युग बीतने के बाद भी दलित समाज की स्थिति जस की तस है। उनके विकास एवं कल्याण की योजनाएं मात्र सरकारी दफ्तरों की फाईलों की शोभा बन कर रह गई हैं। सवर्णों के अत्याचार जैसे दलितों के साथ मार–पीट करना, मैला ढोना, दलित आदिवासी स्त्रियों के साथ अमानवीय व्यवहार, घर जलाना, दलित दूल्हे को अपमानित करना जैसी घटनाएं कम होने के स्थान पर बढ़ती ही गई हैं।

कहने का तात्पर्य यह है कि आजादी के पचास वर्ष पश्चात् भी भारतीय समाज का एक बहुत बड़ा वर्ग आज भी उपेक्षा और घृणा युक्त तिरस्कृत जीवन जीने को विवश है। जिसके लिए विकास का कोई अर्थ नहीं है। दलित रचनाकार दलित समाज की इन समस्याओं से आंख मूंद कर नहीं निकल पाया है। दलित समाज के उत्थान का प्रश्न हमेशा ही उसके सामने मुंह बाये खड़ा रहा है। दलित समाज के लिए साहित्य खाली समय में मनोरंजन या विलास की वस्तु न होकर समाज उत्थान का माध्यम है। एक ओर वह जहां अपने ऊपर हुए अत्याचारों का विरोध करता है वहीं दूसरी ओर दलित समाज में चेतना जागृति का कार्य भी करता है। अत्याचार का विरोध करने की भाषा ही उसकी वेदना को प्रकट करने में सक्षम है। इसे भारतीय समाज का विरोधाभास ही कहा जाएगा कि जिस तीव्र गति से चारों ओर विकास हो रहा है वहीं दलितों पर होने वाले अत्याचारों की संख्या भी तीव्र गति से बढ़ रही है। इसका स्पष्ट प्रमाण हिन्दी व अन्य भारतीय भाषाओं में लिखित दलित रचनाएं हैं। वाल्मीकि लिखते हैं–

"सदियों से पीड़ित
दलित
मेरा हृदय बन गया है
ज्वालामुखी
फट पडने को लालायित
भीतर ही भीतर
मुझे हिला रहा है
बांहे फड़कती हैं
जिह्वा मचलती है
प्रगति अवरूद्ध है
जाति व्यवस्था के बंधन में।" ('सदियों का संताप' से)

वास्तविकता तो यह है कि दलित समाज के लिए आज भी आजादी शब्द का कोई महत्व नहीं है तभी तो गोहाना जैसी घटनाएं भी आम घटनाओं की तरह ही भुला दी जाती हैं। भारत का बहुसंख्यक दलित समाज परस्पर समता भाव का समर्थन करने वाला समाज है। हिंसा जैसी गतिविधियों से सर्वथा पृथक रहने वाला यह वर्ग अकारण ही सवर्णों के अत्याचार का कारण बनता है। जहां पहले स्पष्ट रूप से जाति सम्बोधन कर अपमानित किया जाता था अब वही 'कोटे वाला' कह कर दलित समाज के शिक्षित युवक/युवतियों को अपमानित किया जाता है। कहानी संग्रह 'घुसपैठिये' में वर्णित दलित समाज इसी प्रकार की समस्याओं को उजागर करता है। शायद ही भारत में कोई ऐसा क्षेत्र होगा जहां जातिगत भेदभाव प्रचलित न हो शासन–प्रशासन, स्कूल कॉलेज, विभिन्न होस्टल, पत्रकारिता, ग्रामीण क्षेत्र, न्यायपालिका आदि सभी क्षेत्रों में जातिगत जहर की बानगी आज भी देखी जा सकती है। लाखों बार समाजवाद और गांधीवाद के सुनहरे नारे लगा चुके हैं, लेकिन क्या दलित समाज का हम सर्वांगीण विकास कर सके हैं ? दलितों को भारत में सम्मानजनक स्थिति मिल पाई है ? इसका सीधा उत्तर 'नहीं' में ही मिलता है। यदि दलित समाज की यह मूलभूत प्राकृतिक आवश्यकता पूरी हो गई होती तब 'घुसपैठिये', 'यह अंत नहीं', 'ब्राह्मास्त्र', 'शवयात्रा', 'प्रमोशन', 'मुम्बई कांड', जैसी कहानियों में ओमप्रकाश वाल्मीकि मात्र दलित समाज के सम्मान के हितों की रक्षा करने हेतु संघर्ष नहीं कर रहे होते ? आज भी हिन्दी दलित साहित्य अपनी सम्पूर्ण ऊर्जा छुआछूत एवं जातिप्रथा के विरोध तथा दलितों के सम्मान की लड़ाई में ही लगा रही है। आरंभिक शिक्षा और स्त्री शोषण का प्रतिरोध हिन्दी दलित–साहित्य चिन्तन के प्रमुख केन्द्र में हैं।

कहानी 'यह अंत नहीं' की बिरमा एवं 'जंगल की रानी' की कमला क्या इस तथ्य से अवगत है कि वे जिस देश में निवास कर रही हैं वह देश कितनी तीव्र गति से विकास के पथ पर अपना परचम लहरा रहा है ? पत्रकारिता के पेशे में जद्दोजेहद करता दिनेशपाल जाटव मीडिया कंपनी के करोड़ों रूपयों के वार्षिक टर्न ऑवर से क्या बिलकुल अनजान है ? यदि हां, तो यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि आज भी

दलित समाज को मध्ययुगीन समाज में जीने के लिए विवश किया जा रहा है। विकास के लाभ से दलित समाज को दूर रखने की यह विधिसम्मत योजना है। जिसे शासन व्यवस्था में बैठे मनुवादी लोगों का समर्थन प्राप्त है। महानगरों की गगनचुंबी इमारतों के बीच आज भी शिक्षित दलित समाज सम्मान पूर्वक जीवन व्यतीत नहीं कर सकता है। 'जाति' का पता चलते ही सारा वातावरण ही कटु हो जाता है और समूचा भारतीय समाज 'कूड़ेघर' में तब्दील हो जाता है।

ओम प्रकाश वाल्मीकि अपनी कहानियों में उस तथाकथित भारत का चित्रण करते हैं जहां दलित समाज विकास की इन योजनाओं से सर्वथा अनजान है। वह तो अभी मात्र शिक्षा और आत्म–सम्मान जैसी मूलभूत आवश्यकताओं के लिए ही जूझ रहा है। मेडिकल कॉलेज में छात्रों के साथ छुआछूत का बर्ताव और डीन जैसे जिम्मेदार पदाधिकारी द्वारा छुआछूत को सही ठहराना, दूसरी ओर विश्व के सबसे बड़े लोकतन्त्र का घर कहे जाने वाले देश के विधायक, डिप्टी कलक्टर घात लगाए बैठे किसी भेड़िये से कम नहीं हैं जो मौका मिलते ही दलित स्त्रियों की इज्जत लूटने में अपनी बहादुरी दिखाने से पीछे नहीं हटते हैं। इतनी अधिक विषमता का उदाहरण दुनिया के किसी अन्य देश में देखने को नहीं मिलती है। यहां तक की अफ्रीका में भी 'काले लोगों' का विकास भारतीय दलितों की तुलना में तीव्र गति से हुआ है।

कहानी संग्रह 'घुसपैठिये' में वर्णित दलित समाज ग्रामीण एवं शहरी दोनों पृष्टभूमि के हैं परन्तु दलितों पर होने वाले अत्याचारों का स्वरूप दोनों ही जगह एक समान है। पहले दलित पात्र अत्याचार से मुक्ति के लिए शहरों की तरफ पलायन करते थे, लेकिन जब शहरी सभ्यता भी मनुवादी व्यवस्था का पोषक बन जाती है तब संघर्ष और प्रतिरोध के अलावा कोई चारा नहीं रह जाता है। यहीं आकर बाबा साहेब अम्बेडकर का कथन–'शिक्षित बनो! संघर्ष करो! संगठित हो!' दलित समाज की मुक्ति का गौरव–गान बन जाता है। परिणामस्वरूप अब दलित अत्याचार को मूकभाव से सहन न करके तीव्र गति से विरोध करता है। वह अपने अधिकारों के लिए शासन से टक्कर लेता है। अपने लिए प्रतिनिधित्व की मांग करता है चाहे वह ग्रांम–पंचायत हो

या मेडिकल कॉलेज। वह अब शिक्षा के उच्च संस्थानों में **घुसपैठ** कर चुका है जो कल तक अघोषित रूप से सवर्णों के लिए ही आरक्षित थे। दलितों द्वारा बनाया गया यह स्पेस सवर्णों के जातिगत श्रेष्ठता के मिथकों को तोड़ रहा है और वह अपने समाज की अस्मिता की स्थापना के लिए कटिबद्ध है। 'घुसपैठिये' का मूल कथ्य इसी ओर संकेत करता है।

आधार ग्रंथ

1. ओमप्रकाश वाल्मीकि, घुसपैठिये (कहानी संग्रह), राधाकृष्ण प्रकाशन, 2003, दिल्ली,

सहायक ग्रंथ

(अक्षर क्रम : अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, कवर्ग, चवर्ग, तवर्ग, टवर्ग, य, र, ल, व, श, ष, स, ह, क्ष, त्र, ज्ञ,)

1. अजय कुमार, दलित पैंथर आंदोलन, गौतम बुक सेन्टर, 2006 दिल्ली
2. आधुनिकता के आइने में दलित (सं.) अभय कुमार दुबे, वाणी प्रकाशन 2007, दिल्ली
3. ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, 2008, दिल्ली,
4. ओमप्रकाश वाल्मीकि, जूठन (आत्मकथा), राधाकृष्ण प्रकाशन, 2006, दिल्ली,
5. ओमप्रकाश वाल्मीकि, सलाम (कहानी संग्रह), राधाकृष्ण प्रकाशन, 2000, दिल्ली
6. ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानियों में दलित चेतना (सं.) हरपाल सिंह अरूष, जवाहर पुस्तकालय, 2008, मथुरा (उ. प्र.)
7. ओमप्रकाश वाल्मीकि, सदियों का संताप (कविता संग्रह), गौतम बुक सेन्टर, 2002 दिल्ली
8. कुसुम वियोगी, चार इंच की कलम (कहानी संग्रह) समता प्रकाशन, 1996, दिल्ली
9. कांचा इलैया, मैं हिन्दू क्यों नहीं हूँ (हिन्दी अनुवादः मुकेश मानस), आरोही बुक ट्रस्ट, 2003, दिल्ली,
10. कंवल भारती, दलित विमर्श की भूमिका, इतिहास बोध प्रकाशन, 2007, दिल्ली
11. तेज सिंह, उत्तरशती की हिन्दी कहानी, किताब घर प्रकाशन, 2006, दिल्ली
12. मोहनदास नैमिशराय, आवाजें (कहानी संग्रह), समता प्रकाशन, दिल्ली, 1998,

13. दलित दखल, (सं.) श्यौराज सिंह 'बेचैन' साहित्यिक संस्थान, 2001, गाजियाबाद,(उ.प्र.)
14. डॉ. अम्बेडकर वाड़मय, सम्पूर्ण वाङमय, कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार, 1998, दिल्ली
15. डॉ. भीमराव रामजी अम्बेडकर, भगवान बुद्ध और उनका धर्म (हिन्दी अनुवादः भदन्त आनन्द कौसल्यायन), सिद्धार्थ प्रकाशन, 2001, बम्बई,
16. डॉ. धर्मवीर, कबीर के आलोचक, वाणी प्रकाशन, 1998, दिल्ली,
17. तेज सिंह, दलित समाज और संस्कृति, आधार प्रकाशन, 2007 पंचकूला (हरियाणा)
18. दया पवार, अछूत (आत्मकथा), हिन्दी अनुवादः दामोदर खडसे, राधाकृण प्रकाशन 2006, दिल्ली
19. प्र.ई. सोनकांबले, यादों के पंछी (आत्मकथा) हिन्दी अनुवादः डॉ. सूर्यनाराण रणसुभे, राधाकृण प्रकाशन, 2005, दिल्ली
20. प्राचीन भारत, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, 2000, दिल्ली,
21. भारतीय दलित साहित्यः परिप्रेक्ष्य, (सं.) कमला प्रसाद, वाणी प्रकाशन, 2003, दिल्ली
22. भगवान दास, मैं भंगी हूँ, गौतम बुक सेन्टर, 2007, दिल्ली
23. माता प्रसाद गुप्त, झोपड़ी से राजभवन (आत्मकथा), नमन प्रकाशन, 2002, दिल्ली,
24. मधुलिमये, बाबा साहब आम्बेडकर एक चितंन, आत्माराम एण्ड संस ,2008, दिल्ली
25. रोबिन जेफ्री, भारत समाचार पत्र क्रान्ति, (हिन्दी संस्करण) भारतीय जनसंचार संस्थान, 2004, दिल्ली
26. रामशरण शर्मा, शूद्रों का प्राचीन इतिहास, राजकमल प्रकाशन, 2007 दिल्ली
27. लक्ष्मण गायकवाड़, पत्थर कटवा (उपन्यास), (हिन्दी अनुवादः प्रभा शेट), वाणी प्रकाशन, 2006, दिल्ली

28. विपिन बिहारी, आधे पर अन्त (कहानी संग्रह), मनभावन प्रकाशन, 2006, दिल्ली
29. विपिन विहारी, पुनर्वास (कहानी संग्रह), कामना प्रकाशन, 1999, दिल्ली
30. शिवमूर्ति, तर्पण (उपन्यास), राजकमल, प्रकाशन, 2004, दिल्ली
31. शरणकुमार लिम्बाले, दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र (हिन्दी अनुवादः रमणिका गुप्ता), वाणी प्रकाशन, 2000,
32. सुशीला टाकभौरे, संघर्ष (कहानी संग्रह), शरद प्रकाशन, 2006, नागपुर, (मुम्बई)
33. सूरजपाल चौहान, हैरी कब आएगा ? (कहानी संग्रह), सम्यक् प्रकशन, 2003, दिल्ली

पत्रिकाएं

1. अपेक्षा, (सं. तेज सिंह) जुलाई–सितम्बर, 2003
2. अपेक्षा, (सं. तेज सिंह) जुलाई–सितम्बर, दिल्ली, 2005
3. अपेक्षा, (सं. तेज सिंह) जनवरी–मार्च, दिल्ली, 2006
4. अपेक्षा, (सं. तेज सिंह) जुलाई–सितम्बर, दिल्ली, 2006
5. अपेक्षा, (सं. तेज सिंह) अप्रैल–जून, 2007
6. अपेक्षा, (सं. तेज सिंह) अक्टूबर–दिसम्बर, 2007
7. अपेक्षा, (सं. तेज सिंह) अप्रैल–जून, 2008
8. कथादेश, (सं. हरिनारायण) मार्च, 2005,
9. दलित साहित्य वार्षिकी (सं. जयप्रकाश कर्दम) 2002
10. दलित साहित्य वर्षिकी (सं. जयप्रकाश कर्दम) 2003
11. दलित साहित्य वर्षिकी (सं. जयप्रकाश कर्दम) 2004
12. दलित साहित्य वर्षिकी (सं. जयप्रकाश कर्दम) 2005
13. दलित साहित्य वर्षिकी (सं. जयप्रकाश कर्दम) 2006
14. युद्धरत आम आदमी, (सं. रमणिका गुप्ता) अंक 92, अप्रैल–जून, 2008
15. युद्धरत आम आदमी, (सं. रमणिका गुप्ता) अंक 90, जनवरी–मार्च, 2008
16. युद्धरत आम आदमी, (सं. रमणिका गुप्ता) अंक 94, अक्टूबर–दिसम्बर, 2008
17. वसुधा–58, (सं. कमला प्रसाद) जुलाई–सितम्बर, 2003
18. साखी, (सं. सदानन्द शाही) अंक 17, वाराणसी, जुलाई–सितम्बर, 2008
19. हंस, सत्ता और दलित (विशेषांक), (सं. राजेन्द्र यादव) अगस्त 2004, दिल्ली